बाल गंधर्व

अद्वितीय नाट्य कलाकार

राष्ट्रीय जीवन चरित

बाल गंधर्व

अद्वितीय नाट्य कलाकार

मोहन नदकर्णी

अनुवाद

सुरेन्द्र गुप्त

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-0556-5

आवरण चित्र
एस. एन. पंडित द्वारा निर्मित तैल चित्र
आधार : श्याम और श्वेत, मूल छाया चित्र
आभार : देवरुख शिक्षण प्रसारक मंडल,
देवरुख, जिला - रतनागिरि

आंतरिक छायाचित्र
आभार : अरुण अथालये

पहला संस्करण 1993
पहली आवृत्ति 1995 (*शक* 1917)

रु. 20.00

Bal Gandharva (*Hindi*)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

मेरी
सर्वतोन्मुखी प्रतिभा संपन्न गायिका बहन
बोनी
(1910-1943)
की पुनीत स्मृति में
जिसने मेरे मन में शैशव काल से ही
संगीत के प्रति रुचि पैदा की

विषय-सूची

भूमिका

मैं ऐसी पीढ़ी का प्रतिनिधि हूं जिसके भाग्य में बाल गंधर्व को एक अभिनेता - गायक के रूप में उनकी कला के शिखर पर देखना नहीं लिखा था, जिनका महान कार्य नाट्यकला का पूर्णतया चरमोत्कर्ष माना जाता है। और जब मुझे केवल एक बार उन्हें रंगमंच पर "अमृत-सिद्धि" नाटक में मीराबाई की भूमिका में देखने का अवसर प्राप्त हुआ, तो वे अपना स्वर्ण काल व्यतीत कर चुके थे, वे लगभग पचास वर्ष के थे। किंतु अभिनेता और गायक दोनों ही रूपों में उनका प्रसिद्ध करिश्मा तब भी बहुत अंश तक विद्यमान था। मैं उस समय केवल ग्यारह वर्ष का था और नाटक के प्रति मेरा पूरा अनुराग उसके "सजीव" संगीत वाले भाग के लिए होता था। तथा इसलिए भी, क्योंकि बाल गंधर्व के रिकार्ड किये गये रंगमंचीय गीतों ने मेरी प्रारंभिक संगीत भाव प्रवणता को शैशव काल से ही पोषित एवं प्रोत्साहित किया था।

लगभग तीन दशाब्दी बीती होंगी कि मुझे संगीतज्ञ से दुबारा मिलने का अवसर प्राप्त हुआ -- किंतु रंगमंच से बाहर। वह अवसर मुंबई में एक प्रमुख सांस्कृतिक संस्था द्वारा उनके सम्मान में किया गया बधाई समारोह था। यह अगस्त 1963 में हुआ था।

तूफानी मौसम के बावजूद भी सभा भवन पूर्ण आनंदमय था तथा बाल गंधर्व के प्रेमी दर्शकों से ठसाठस भरा हुआ था। वे मराठी रंगमंच के अपने वरिष्ठ कलाकार , जो कि हाल ही में पचहत्तर वर्ष के हुए थे, को देखने और सुनने के लिए सभी महा ागरों से आये थे। वह क्षण तो बहुत ही हृदयस्पर्शी था जब अधरंग से असमर्थ पुराने अनुभवी कलाकार को बैठी हुई मुद्रा में दो सशक्त जवान व्यक्ति उठाकर सभा भवन में लाये और हाथों वाली बड़ी कुर्सी पर बिठा दिया और दर्शकों से खचाखच भरा प्रेक्षागृह करतल ध्वनि से गूंज उठा।

महत्वपूर्ण बात यह थी कि दर्शकों में महिलाएं अधिक थीं। वे वास्तव में इस बात का प्रतीक थीं कि उनके प्रशंसकों के मन में अभी भी उनके लिए अद्वितीय आदर, सम्मान एवं प्रशंसा विद्यमान थी। यह स्पष्ट था कि उनमें थोड़ा बहुत प्रदर्शन करके बधाई का उत्तर देने की शक्ति नहीं थी। स्वाभाविकतया, दर्शकों का एक विशाल वर्ग द्रवित होकर रो पड़ा, यद्यपि गौहरबाई ने, जो उस अवसर पर उसके साथ थी, खानापूर्ति के लिए हमें कुछ सुनाया

किंतु वह संगीतज्ञ की "गायकी" की क्षणिक झलक मात्र थी।

उनके जीवन काल में तथा देहांत के बाद भी, मराठी में बाल गंधर्व पर प्रसिद्ध लेखकों तथा सुविज्ञ आलोचकों द्वारा अनेक पुस्तकें लिखी गईं, जिनसे उनकी बहुमुखी प्रतिभा के अनेक रूप प्रकाश में आते हैं किंतु उनके लिए जो मराठी भाषा नहीं जानते थे, इन शब्दों का अर्थ केवल बंद पुस्तक में ही रहा।

किंतु फिर, सब तथ्यों पर विचार किया गया। वे न केवल महाराष्ट्र के अपितु समस्त भारत एवं उससे भी आगे विश्व विख्यात गायक कलाकार थे। सत्य ही वे मराठी संगीत रंगमंच के स्वर्ण युग का प्रतीक थे। किंतु उनकी कला में ऐसी श्रेष्ठता थी जिसका संबंध वास्तव में विद्वान जगत से था।

पूर्णतया रूढ़िगत शब्दार्थ के अनुसार इस पुस्तक का तात्पर्य जीवनी नहीं है, अपितु विशेषतया मराठी संगीत नाटक की परंपरा तथा सामान्यतः भारतीय संगीत को समृद्ध करने के लिए बाल गंधर्व के योगदान का मूल्यांकन करना है। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिए, मैं उन सब मराठी लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं जिनके साहित्य द्वारा मैं संगीतज्ञ के जीवन में झांक सका।

मैं प्रकाशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन्होंने "नटसम्राट", जिनको समस्त संसार बाल गंधर्व के नाम से अभिनंदन करता है, की जन्मशताब्दी के स्मरणोत्सव के उपलक्ष में मुझे यह पुस्तक लिखने का सौभाग्य प्रदान किया।

अंत में, किंतु किसी भी तरह से मामूली नहीं, मुझे अत्यधिक प्रेममय सहयोग मेरी पत्नी, सुनीति ने प्रदान किया जिसने अपने अनेक घरेलू कार्यों के बावजूद भी अपना अमूल्य समय मेरे लिखे हुए को टाइप करने में लगाया। वस्तुतः यदि वह इस कार्य में मेरा साथ न देती तो मेरे लिए इस पुस्तक को इतने कम समय में पूरा करना संभव नहीं था।

मुंबई
19 अप्रैल, 1988

मोहन नदकर्णी



1

परिचय

वर्तमान पीढ़ी के रंगमंच प्रेमियों के लिए संभवतया बाल गंधर्व का नाम बीते हुए समय के एक तेजस्वी व्यक्ति का प्रतीक है परंतु पुरानी पीढ़ी के लोगों के लिए, जिनमें से अधिकतर विस्मृति के गर्भ में समा चुके हैं, बाल गंधर्व एक जीवित अनुश्रुति थे जिनकी नाट्य कला के क्षेत्र में बहुपक्षीय उपलब्धियों ने वास्तव में सभी सीमाओं को पार कर लिया था। ऐसा इसलिए स्वाभाविक भी था, क्योंकि उन्होंने संगीतज्ञ को गायक अभिनेता के रूप में भी उतने ही सर्वोच्च शिखर पर देखा था जितना कि उन्हें उनके स्वर्णकाल में नारी भूमिकाओं में देखा था। वे उनके मधुर, भावुकतापूर्ण संगीत से भी उतने ही प्रभावित हुए थे जितने कि उनके आश्चर्यचकित कर देने वाले सौम्य, सुंदर, मनमोहक रूप को पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और हास्य नाटकों में देखकर हुए थे।

वस्तुतः, और किसी भी नाट्यकलाकार का मराठी संगीत रंगमंच पर इतनी मनोहरता, इतने यथार्थ, इतनी उलझनों के साथ चार दशाब्दी से भी अधिक समय तक इतना आधिपत्य नहीं रहा जितना कि बाल गंधर्व का। उनके प्रेमी दर्शक केवल मराठी-भाषी समाज में ही नहीं फैले हुए थे अपितु गुजराती, पारसी और सिंधी आदि विशिष्ट वर्गों में भी उनके नाट्य-कला प्रेमी थे। उनके भक्तों में पुराने बड़े राज्यों के शासक तथा छोटे अभिजात वर्गीय थे, जो उनके प्रसिद्ध संगीत नाटकों को देखने के लिए बुद्धिजीवी तथा शास्त्रीय संगीत के सर्वोच्च अनुभवी व्यक्तियों के साथ कंधे से कंधा भिड़ाते हुए उनके संगीत उत्सव के स्थान की ओर दौड़ पड़ते थे।

यद्यपि अपने प्रसिद्ध जीवन-वृत के स्वर्ण-काल में, बाल गंधर्व ने अपने नाटकों का प्रदर्शन करने के लिए केवल मराठी-भाषी क्षेत्रों के कुछ नगरों को चुना था जिनमें प्राचीन बंबई प्रेजीडेंसी और केन्द्रीय प्रांत तथा बरार थे, फिर भी उनके गीतात्मक प्रदर्शनों अथवा संगीत नाटकों का करिश्मा उनके प्रशंसकों पर इतना अधिक सम्मोहक था कि वे लोग दूर दूर से उनके नाटकों को देखने के लिए खिंचे चले आते थे। विशेष बसें चलाई जातीं थीं और तार द्वारा पहले ही सीटें बुक करवा ली जातीं थीं ताकि उनके प्रदर्शनों में अवश्य पहुंच सकें।

कुछ लोग संगीतज्ञ को मराठी संगीत नाटक की आत्मा की पूर्णतया प्रतिभूति मानते थे। अन्य लोग उन्हें पथप्रदर्शक कहते थे जिन्हें रंगमंच पर नारी भूमिकाओं में देखकर महिलाओं के कपड़ों, केशविन्यास तथा शिष्टता का फैशन प्रारंभ होता था। और कुछ व्यक्ति उन्हें मराठी रंगमंच का प्रवर्तक भी मानते थे। किंतु वे सभी बिना किसी अपवाद के उन्हें "नट सम्राट" अर्थात नाट्यकलाकारों का राजा मानते थे। वस्तुतः बाल गंधर्व का 15 जुलाई 1967 को देहांत हो जाने से मराठी संगीत रंगमंच के स्वर्ण युग का सचमुच अंत हो गया जिसके वे बेताज बादशाह थे।

यह लिखित रूप में उपलब्ध है कि 1921 से लेकर दस वर्षों तक निरंतर बाल गंधर्व की वार्षिक आय 1.75 लाख रुपये रही थी। फिर भी वे अपने आपको भारी कर्ज में फंसा हुआ पाते थे — एक बार नहीं अपितु दो बार — और तीन महीने या इससे अधिक मूर्च्छित अवस्था में रहने के पश्चात उनका बहुत गरीबी की हालत में देहांत हुआ था। इसका कारण यह नहीं था कि उन्होंने बहुत ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया या बहुत अपव्यय किया था। यह उनकी अपनी कलादेवी के प्रति अविश्वसनीय, हार्दिक निष्ठा का परिणाम था जिसने उन्हें कंगाल बनाया। उनका जीवन तो सादा और कठोर था जिसका अधिकांश भाग उन्होंने रंगमंच कला को समृद्ध करने में गुजार दिया।

इससे भी अधिक, अपनी योजनाओं के अंतर्गत, बाल गंधर्व अपनी मंडली के प्रत्येक सदस्य की भलाई का कार्य सबसे पहले करते थे। अपने स्वर्णकाल में गंधर्व नाटक मंडली में जैसा कि सर्वविदित है, एक सौ से अधिक कर्मचारी नियुक्त थे जिनमें से अधिकतर एक ही छत के नीचे रहते थे।

इस पर विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि बाल गंधर्व के जीवन एवं व्यवसाय की कहानी मराठी संगीत नाटक के भाग्य के उतार-चढ़ाव की कहानी है— इसके उदय, प्रसिद्धि, पतन और स्वतंत्रता प्राप्ति और विशेष रूप से महाराष्ट्र के एकभाषी राज्य के रूप में उभरने के बाद पुनरुत्थान की कहानी है। संगीतज्ञ ने 79 वर्ष की आयु तक यह सब घटित होते देखा।

महान पुरुषों के जीवन (अन्य लोगों की भांति) उन परिस्थितियों से जुड़े होते हैं जिनमें उनका जन्म, विकास और देहांत हुआ हो। इस कारण से, बाल गंधर्व जैसे नाट्यकलाकार के जीवन एवं जीवन-वृत की कहानी उनके जीवन और घटनाओं के उस परिप्रेक्ष्य में समझनी चाहिए जिनमें उनका जन्म हुआ, जिनमें वे रहे, एक महापुरुष की भांति समृद्ध हुए तथा दुखद परिस्थितियों में इतिहास में समा गये।

इसलिए, पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में पुरानी बंबई प्रेजीडेंसी के मराठी-भाषी क्षेत्रों के सर्वेक्षण से उपलब्ध नाटक परिदृश्य का संक्षिप्त सर्वेक्षण अगले अध्याय में दिया जा रहा है ताकि यशस्वी नाट्य-कलाकार के जीवनी-साहित्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला जा सके।



2

आमुख

यह स्वीकार्य तथ्य है कि मराठी नाटक के जन्मदाता प्रतिभासंपन्न विष्णुदास भावे थे, जिन्होंने पुरानी बंबई प्रेजीडेंसी के दक्षिणी भाग के राज्य सांगली में अपने नाटक "सीता-स्वयंवर" का प्रथम प्रदर्शन किया था। किंतु इसके लगभग 37 वर्ष बाद – 31 अक्तूबर 1880 को – मराठी गीतात्मक नाटक (संगीत नाटक) शैली का जन्म हुआ। इसी दिन बलवंत पांडुरंग उर्फ अन्नासाहेब किर्लोस्कर (1843-1885) ने अपने प्रथम संगीत नाटक "शांकुतल" का रंगमंच प्रदर्शन किया था। यह कालिदास के अमर संस्कृत नाटक "अभिज्ञान शाकुंतलम्" का उनके द्वारा किया गया मराठी रूपांतर था।

वस्तुतः, उस समय शायद कुछ ही लोग यह समझ सकते थे कि मराठी-भाषी क्षेत्र की यह शैली भारतीय संगीत नाटक परंपरा में कला के नये रूप में उभरकर अद्वितीय देन बन जायेगी। संभवतया भारत में ऐसा कोई अन्य क्षेत्र नहीं है जिसका इतना महत्वपूर्ण योगदान भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत को , विशेषतया हिंदुस्तानी परंपरा में रंगमंच के माध्यम से लोगों को मिला हो। उनका अभिनव प्रथा को प्रवर्तित करने का प्रयास, जो "नाटक संगीत" के नाम से प्रसिद्ध है, वास्तव में भारतीय संगीत परंपरा को प्रेरणा प्रदान करने की उनकी सम्मोहक लालसा का प्रतीक था जिसकी गहनता, क्रमबद्धता एवं विविधता अद्वितीय थी।

किर्लोस्कर, जिसने किर्लोस्कर संगीत नाटक मंडली नाम से संपूर्ण नाटक मंडली स्थापित की थी, एक स्वप्नद्रष्टा था जो अपने समय में अग्रसर रहा था। वह न केवल एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति था, अपितु एक सुयोग्य नाटककार, एक संवेदनशील कवि और एक प्रतिभाशाली अभिनेता था जिसका संगीत के प्रति परिष्कृत रुझान था। उसने अपनी मंडली में अनेक संगीतकारों और अभिनेताओं को नियुक्त किया था । इन गायकों की पहली टोली में बालकोबा नटेकर थे, जो प्रसिद्ध शास्त्रीय संगीतकार थे तथा मोरोबा वागलीकर थे, जिन्होंने सुगम संगीत के क्षेत्र में विशिष्टता दिखायी थी। भाऊराव कोल्हटकर इस मंडली में शीघ्र ही सम्मिलित होने वालो में से थे, जो प्रतिभाशाली संगीतकार तथा अलौकिक आवाज के

धनी अभिनेता थे। वे संगीतात्मक भाव के सभी पहलुओं को प्रस्तुत करने में दक्ष थे। यह भी कहा जा सकता है कि कोल्हटकर रंगमंच संगीत को, 1901 में हुई उसकी असमय मृत्यु तक लोकप्रियता दिलाने में वागलीकर मुख्यतया जिम्मेवार है। कोल्हटकर ने वागलीकर तथा नटेकर के साथ मिलकर वास्तव में रंगमंच संगीत के क्षेत्र में एक पवित्र त्रिक बनाया और इन्हीं के प्रयास से "मराठी नाट्य संगीत" ऊपर उठने लगा।

प्रारंभ में किर्लोस्कर के संगीत का क्षेत्र विशाल था। उसने अपने नाटकों के लिए जो गीत लिखे वे विविध लोकप्रिय भक्ति गीतों तथा मराठी-भाषी क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों पर आधारित धुनों का सुखद संग्रह थे। उनके साथ हिंदुस्तानी तथा कर्नाटकी "पद्धतियों", का संग्रह भी था। और गीतों के लिए संगीत वह स्वयं तैयार करता था। उसके गीतों से भरे हुए "शाकुंतल", "राम-राज्य वियोग" तथा "सौभद्र" उसकी संगीत रचना की प्रतिभा के उत्कृष्ट प्रमाण हैं। वे इस प्रकार के रंगपटल का निर्माण करने में दक्ष थे जो दर्शकों के सभी वर्गों की संगीतमयी क्षुधा को शांत करने में सक्षम था।

उसने अपने प्रयोजन के लिए उत्तरी और दक्षिणी, दो संगीत पद्धतियों को साज के काम में लिया जिससे उसकी अलौकिक दक्षता प्रदर्शित होती है और जो विशेष रुचिकर है। यह आश्चर्यजनक नहीं, क्योंकि वह प्रेजीडेंसी के कन्नड़-भाषी क्षेत्र का रहने वाला था और जिसने यशस्वी संगीताचार्य बालकृष्णबुवा आइचल करंजीकर से मार्गदर्शन एवं निर्देशन प्राप्त किया था। इन्होंने ही पश्चिमी तथा दक्षिणी क्षेत्रों में ग्वालियर की "ख्याल" गायन शैली का पथप्रदर्शन किया था। यह किर्लोस्कर के जीवन काल के प्रारम्भिक वर्षों की बात है। संभवतया कई क्षेत्रों के विभिन्न राजसी राज्यों में अनेक "ख्याल घरानों" के प्रचलन से किर्लोस्कर शैली की लोकप्रियता को और उत्साह मिला।

फिर भी समय-समय पर किर्लोस्कर के नाट्य संगीत को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा; पहले तो हिंदुस्तानी संगीत के "ध्रुपद" ओर "धमार" शैलियों के यशस्वी प्रतिपादक पंडोवा गौरव (यवतेश्वरकर) का, फिर माधव नारायण पाटनकर का, जिन्होंने पारसी और गुजराती रंगमंच गीतों पर आधारित सुगम संगीत को लोकप्रिय बनाया तथा उर्दू "कव्वाली" और "गजल" को भी; और फिर दुबारा, श्रीपद कृष्णा कोल्हटकर का सामना करना पड़ा, जिन्होंने अपने "वीरतनया" और "मूकनायक" जैसे नाटकों में पारसी, गुजराती और उर्दू रंगमंच की भव्य धुनों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। किर्लोस्कर की शैली इतनी समुत्थान-शक्ति संपन्न साबित हुई कि उसने सभी चुनौतियों पर विजय प्राप्त कर ली थी।

तीस के दशक के मध्य से लेकर पचास के दशक के प्रारंभ तक फिल्म संगीत के आविर्भाव से भारतीय नाट्य कला को बचाने का भारी संकट पैदा हो गया था। यद्यपि उस समय तक मराठी "संगीत नाटक" के पतन के बाद पुनरुत्थान के स्पष्ट संकेत मिलने लगे थे, फिर भी सत्तर के दशक के मध्य तक, "नाट्य संगीत" रंगमंच के बाहर भी निरंतर लोकप्रियता प्राप्त करने लगा था। और यह आज तक भी विद्यमान है।

मराठी पद (गीत का एक प्रसिद्ध लोकप्रिय रूप) को जो आश्चर्यजनक लोकप्रियता निरंतर प्राप्त हुई उसका कारण यह है कि पिछले आठ दशकों में मराठी भाषा में संपन्न कोई भी शास्त्रीय संगीत की गोष्ठी रंगपटल सभा के गायन के इस रूप के एक या दो मदों के बिना पूरी नहीं मानी जाती थी। अभिजात्य वर्ग के शास्त्रीय संगीताचार्य जैसे अब्दुल करीम खान और मानजी खान भी अपने दर्शकों को लोकप्रिय मराठी "पद" सुनाना सहर्ष स्वीकार करते हैं।

यदि किर्लोस्कर मराठी "नाट्य संगीत" का अग्रगामी है तो इसकी अक्षुण्ण लोकप्रियता का श्रेय, विशिष्ट गायक-अभिनेताओं के विशाल समूह, संगीत निर्माताओं तथा, उन्हें भी अवश्य जाता है जो इस प्रकार के गीतों के प्रतिपादक थे, चाहे वे स्वयं रंगमंच अभिनेता नहीं भी थे। किंतु बाल गंधर्व सदैव इस आकाश गंगा का सबसे अधिक चमकने वाला सितारा रहे हैं।

3

पृष्ठभूमि तथा प्रारंभिक वर्ष



बाल गंधर्व शब्द का मोटे तौर पर अर्थ है एक "दिव्य गायक जो कि बच्चा है"। उन्हें यह नाम लोकमान्य तिलक ने अपने पुणे स्थित निवासस्थान में दिया था। उस विलक्षण प्रतिभा ने दस वर्ष की आयु में ही किसी ग्रामोफोन कंपनी को उसके गीतों के रिकार्ड जारी करने के लिए बहुत उत्साहित किया और उनका नाम इस शताब्दी की प्रारंभिक दशाब्दियों में बहुत चमका। उनके बारे में जहां तक भी सोचें वे उससे भी अधिक थे, कुल मिलाकर उन्हें साधारण भाषा में एक चमत्कार ही कहा जा सकता है। एक ऐसा अद्‌भुत चमत्कार जिसके पीछे विभिन्न घटनाक्रमों, संयोगों या दुर्दिनों की एक पूर्णतया लंबी कहानी है।

उनका जन्म **26** जून **1888** को हुआ और उनका नाम नारायण श्रीपद राजहंस रखा गया। वे उस समय की बंबई प्रेजीडेंसी के सतारा जिले के नागथाने गांव के मध्यमवर्गीय ब्राह्मण परिवार से थे। उनके परिवार का अपने गांव में एक छोटा सा खेत और घर था। लेकिन उनके पिता बंबई सरकार के कृषि विभाग में नक्शानवीस के पद पर कार्य करते थे और उन्हें सरकारी कामकाज के सिलसिले में प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान का दौरा करना पड़ता था। इसलिए ग्यारह बच्चों के परिवार में नारायण का जन्म पुणे में हुआ था।

नारायण के पिता की आय साधारण थी अतः इतने बड़े परिवार में एक ही कमाने वाला होने के कारण उसका गरीबी में पलना स्वाभाविक ही था। लेकिन परिवार का वातावरण संगीतमय था। नारायण के पिता श्रीपदराव को गाने से प्यार था और वे अपनी खुशी के लिए सितार भी बजाते थे। प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी सितार की मधुर झंकार के साथ विभिन्न प्रकार के भूपाली (मराठी भक्ति गीत) गीत गाना उनकी दिनचर्या थी। इसके अतिरिक्त नारायण की मां अन्नपूर्णाबाई और मौसी हरिबाई उस समय के प्रसिद्ध महिला गीत गाया करती थी। दूसरी ओर, उनके मामा वासुदेव पुणताम्बेकर "नाट्यकला प्रवर्तक नाटक मंडली" के संस्थापकों में से एक थे। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जिस कलात्मक वातावरण में नारायण उत्पन्न हुए और पले बढ़े उनका भविष्य उसी से प्रभावित हुआ।

नारायण की शिक्षा का आरंभ उनके जन्मगत गांव में हुआ। लेकिन शीघ्र ही आबासाहेब म्हलास स्कूल की आगे की पढ़ाई के लिए उन्हें पूर्वी खानदेश के जिला मुख्यालय जलगांव ले गये। आबा साहेब जलगांव के प्रसिद्ध वकील थे और उनका विवाह नारायण की मौसेरी बहन से हुआ था। इससे भी बढ़कर, आबा साहेब उस सुंदर किशोर से बहुत प्यार करते थे और उनके ही कहने पर नारायण को जलगांव में उनके संरक्षण में रखा गया।

बचपन में नारायण स्कूल की पढ़ाई में कोई दिलचस्पी नहीं रखते थे। वे संगीतमय वाणी से संपन्न थे और उन्होंने गाने में विशेष रुचि दिखाई। आबा साहेब को स्वयं भी संगीत और नाटक से बहुत प्यार था, इतना अधिक प्यार था कि उनका घर समय समय पर आते रहने वाले नाटक मंडली के सदस्यों का मिलन स्थल बन गया था। इससे उस संवेदनशील बालक को अनेक प्रसिद्ध कंपनियों द्वारा खेले गये बहुत से नाटक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह भी उनका सौभाग्य था कि उन्हें गणपतराव जोशी और बालाभाऊ जोग जैसे सुप्रसिद्ध कलाकारों की अभिनय कला मंच पर देखने को मिली। पहले ने शेक्सपीयर के मराठी में रूपांतरित प्रसिद्ध नाटक ओथेलो का अभिनय करके नाम कमाया तो दूसरे ने अपने मोहक नारी अभिनय से अनेक दर्शकों को चकित कर दिया। परिणामतया नारायण प्रारंभिक जीवन से ही मराठी रंगमंच के परम अनुयायी बन गये।

इतने समय में आबा साहेब ने ठीक ही पहचान लिया कि नारायण को संगीत से आंतरिक प्रेम है। उनकी प्रतिभा को विकसित करने के लिए आबा साहेब ने एक स्थानीय शिक्षक महबूब खान को नियुक्त किया ताकि नारायण शास्त्रीय गायन का सही प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। यद्यपि महबूब खान एक प्रसिद्ध गायक नहीं थे फिर भी उनका सही शब्दचयन और ठीक उच्चारण पर बल देकर स्पष्ट सुरीली आवाज में गाने का ढंग उल्लेखनीय था। निस्संदेह इस बात ने नारायण के गायन को एक मजबूत नींव प्रदान की, जिसकी बहुत आवश्यकता थी, यद्यपि यह कोई सार्थक औपचारिक प्रशिक्षण नहीं था।

इस संगीत प्रशिक्षण के साथ-साथ नारायण को पुणे में अपने कई चाचाओं में से एक चाचा यशवंतराव कुलकर्णी के पास जाकर ठहरने का अवसर मिलता था। यशवंतराव प्रमुख राष्ट्रवादी समाचार पत्र "केसरी" के कार्यालय में कार्य करते थे जिसके संपादक स्वतन्त्रता सेनानी, अदम्य उत्साही श्री लोकमान्य तिलक थे। लोकमान्य तिलक जितने विद्वान पंडित थे, उतने ही प्रखर कला प्रेमी भी थे। अपने चाचा के घर रहते हुए जब नारायण दस वर्ष के थे तो उन्हें तिलक के सामने गाने का सुअवसर मिला।

इस बारे में अनेक कथानक प्रचलित हैं कि नारायण को "बाल गंधर्व" की उपाधि कैसे मिली। किंतु एक बात पर सर्वसम्मति है और यह ऐतिहासिक तथ्य भी है कि तरुण बाल कलाकार को "बाल गंधर्व" की उपाधि प्रदान करने एवं कलाकार बनाने में यशस्वी राष्ट्रीय नेता का योगदान था। साधारणतया यह वृत्तांत मान्य है कि किशोर बालक के मर्मस्पर्शी गायन से आत्मविभोर होकर तिलक एकाएक कह उठे "वाह! कितने सुंदर ढंग से इस बाल

(छोटे) गंधर्व (दिव्य गायक) ने अपने संगीत की बौछार की है"। और जैसा कि हम जानते हैं कि नारायण के साथ अंत तक केवल यह उपाधि ही नहीं लगी रही अपितु उन्होंने तिलक की भविष्यवाणी को भी साकार किया।

आश्चर्यजनक बात यह थी कि नारायण ने अपनी स्कूली शिक्षा तब तक जारी रखी जब तक कि वे माध्यमिक कक्षा के दूसरे दर्जे तक नहीं पहुंच गये। इस अवधि में उनके प्रशंसक अंग्रेजों ने सुझावों की झड़ी लगा दी तथा उन्हें नाट्यकला प्रवर्तक मंडली में बाल अभिनेता-गायक के रूप में स्थान दिया। यह सन् 1903 के आसपास की बात है जब नारायण केवल 15 वर्ष के थे। लेकिन ये प्रयास फलदायी नहीं हुए।

यह कहावत सत्य है कि विपत्तियां अकेले नहीं आतीं। उसी वर्ष कुछ समय बाद, नारायण के पिताजी की टांग को एक दुर्घटना में बहुत चोट आयी। असमर्थता के कारण उन्हें बिना वेतन अवकाश लेकर पुणे में बिस्तर पर ही लेटे रहना पड़ा। इतने बड़े परिवार में एक ही कमाने वाला होने के कारण परिवार को अत्यधिक आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। उसी समय नारायण की मां भी अचानक बीमार पड़ गयी। परिवार की घोर विपत्तियों में एक वृद्धि और हुई, नारायण को पागल कुत्ते ने काट लिया जिसके लिए उन्हें तुरंत इलाज की आवश्यकता थी। उनके माता-पिता की चिंता इस बात से और भी बढ़ गयी क्योंकि पुणे में इसकी उपचार सुविधा बहुत कम और दुर्लभ थी। पिता और पुत्र दोनों को उपचार के लिए तुरंत कोल्हापुर जाना पड़ा।

नारायण के एक अन्य चाचा, अप्पाशास्त्री बालेकर, जोकि धार्मिक उपदेशक थे, इस संकटकाल में परिवार की रक्षा करने आ गये। अप्पाशास्त्री के समर्थक, बाबा महाराज पंडित विद्वान और प्रभावशाली अभिजात्य वर्ग के व्यक्ति थे और राजहंस परिवार का बहुत आदर करते थे। उनकी उदारता और दयालुता के कारण नारायण शीघ्र उपचार करवा सके और संक्रामक रोग से मुक्त हो गये।

फिर भी इस प्रकार कोल्हापुर जाने से बाल गंधर्व के जीवन में एक नये अध्याय का आरंभ हुआ। स्वस्थ हो जाने के बाद भी वे कोल्हापुर में ही रहते रहे। कोल्हापुर में ठहरने के समय का सदुपयोग उन्होंने वहां के एक स्थानीय संगीत शिक्षक अप्पैया बुवा से संगीत का मार्गदर्शन प्राप्त करके किया। इसी बीच इस उदीयमान गायक को बाबा महाराज की विशेष अनुकंपा से राज्य के शासक छत्रपति साहू महाराज से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। महाराज संगीत और नाटक के प्रबल प्रेमी थे और उदीयमान कलाकारों को संरक्षण देने के लिए प्रसिद्ध थे। वे नारायण के गाने से उतने ही प्रभावित हुए जितने उनके सुंदर व्यक्तित्व तथा गौरवमय आचरण से। वे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने किशोर कलाकार को अपने राजदरबार के यशस्वी संगीतकार उस्ताद अल्लादिया खान के संरक्षण में रखने की दिलचस्पी ली।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि ऐसा न होना था। एक दिन नारायण से अकस्मात बातचीत के दौरान छत्रपति साहू महाराज ने अनुभव किया कि उनके युवा आश्रित को सुनने

में कुछ कठिनाई होती है। राजसी संरक्षक के एक प्रश्न के उत्तर में नारायण ने घबराकर कहा कि उनका दायां कान रोगग्रस्त होने के कारण वे ठीक से सुन नहीं सकते।

अपने स्वभाव के अनुरूप, कला-प्रेमी छत्रपति को होनहार सुंदर बालक की दुर्दशा पर गहरा दुख हुआ, क्योंकि उससे उन्हें कला के क्षेत्र में बहुत आशायें थी। इसलिए उन्होंने नारायण को अल्लादिया खान के मार्गदर्शन में छोड़ने से पहले उनके रोग के उपचार का प्रबंध करके उन्हें रोग मुक्त कराना आवश्यक समझा।

यद्यपि कोल्हापुर में उपचार सुविधायें उपलब्ध थीं फिर भी छत्रपति ने अनुभव किया कि कोल्हापुर के बिल्कुल समीपवर्ती एक अन्य राज्य मिराज का बनलेस मिशन अस्पताल चिकित्सा उपचार सुविधाओं की दृष्टि से बेहतर सुसज्जित था। उस समय प्रसिद्ध चिकित्सक तथा सर्जन डाक्टर चार्ल्स एडवर्ड वेल अस्पताल के प्रमुख थे। यह एक सुखद संयोग था कि किर्लोस्कर नाटक कंपनी उन्हीं दिनों मिराज में आई थी। क्योंकि उस कंपनी को भी छत्रपति साहू जी का संरक्षण प्राप्त था इसलिए महाराज ने आदेश दिया कि नारायण को मिशन अस्पताल में अपने इलाज के दौरान किर्लोस्कर मंडली के साथ रहना चाहिए। कंपनी के मालिकों ने भी कुछ अनुभव किया कि राज्यादेश पर बीमार बालक को अपने साथ रखना उनके भाग्य में उत्थान लाने के लिए सहायक सिद्ध होगा।



4

अंधेरे से उजाले की ओर

यदि वर्ष 1905 "किर्लोस्कर संगीत नाटक मंडली" के भाग्योत्थान में एक मोड़ था तो बाल गंधर्व के जीवन काल में यश और लोकप्रियता तक पहुंचने का प्रारंभिक वर्ष भी यही था। इसमें कुछ आश्चर्य हो सकता है किंतु यह पहली बार नहीं था कि मंडली का ध्यान उन पर गया हो और इस प्रकार आरंभ होती है उनकी कहानी।

राजहंस परिवार के सगे संबंधियों में से उस परिवार का भला चाहने वालों और उस परिवार को निर्धनता के अभिशाप से मुक्ति दिलाने की उत्कट अभिलाषा रखने वाले उनके परिवार के बहुत से रिश्तेदारों ने बाल गंधर्व को मंडली में उचित नौकरी दिलाने का भरसक प्रयत्न किया। सन् 1903 में आबासाहब म्हलास ने मंडली में बाल गंधर्व का गायन कार्यक्रम समारोह आयोजित करवाने में पहल की। उस समय बाल गंधर्व की आयु 15 वर्ष की थी और जैसा कि अधिकतर बालकों के साथ उस आयु में होता है, उनकी मीठी बारीक आवाज मोटी होती जा रही थी तथा बेसुरी लगने लगी थी। मंडली के निष्ठावान इंचार्ज की प्रतिक्रिया सहानुभूतिपूर्ण नहीं थी। इससे भी अधिक बुरा उन्होंने यह किया कि संवेदनशील किशोर की अनेक शुभचिंतकों की उपस्थिति में खुलकर हंसी उड़ाई और रूखेपन से तिरस्कार करके उसे निकाल दिया।

बाल गंधर्व की आवाज धीरे-धीरे ठीक होनी आरंभ हो गई थी किंतु उसमें निश्चित रूप से माधुर्य उनके कोल्हापुर ठहरने पर आया। अप्पैया बुवा के प्रशिक्षण में रहना उनको सही मार्ग पर लाने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। बाल गंधर्व जिस समय दो वर्ष बाद किर्लोस्कर मंडली के साथ रहने के लिए आये, वे उदीयमान गायक के रूप में पहले ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे जिसे कि छत्रपति साहू का संरक्षण प्राप्त था।

किर्लोस्कर नाटक मंडली की सफलता के बाद मराठी-भाषी क्षेत्र में बहुत सी नाटक मंडलियां प्रकट हुयीं जिन्होंने कोल्हापुर नरेश से सीधे जाकर निवेदन किया कि युवा कलाकार की सेवाएं उनकी मंडली को देने की कृपा करें। यहां तक कि स्वदेश हितचिंतक नाटक मंडली जो कि प्रमुख नाटक मंडली मानी जाती थी, जिसका स्थान किर्लोस्कर नाटक मंडली के बाद

दूसरा था, वह भी छत्रपति की अनुमति प्राप्त करने में सफल न हो सकी। जो कोई भी इस बारे में महाराज से मिलने जाता उसे यही उत्तर मिलता था कि बाल गंधर्व अभी अपनी कला का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

जब बाल गंधर्व अपने उपचार के लिए किर्लोस्कर मंडली के साथ रहने आये तो वहां सब ठीक ठाक नहीं था। निस्संदेह यह उस समय की सर्वश्रेष्ठ मंडली थी। सन् 1885 में इसके संस्थापक अन्ना साहब की अचानक मृत्यु हो जाने पर, गोबिंद बल्लाल देवल जो कि उनके आदरणीय एवं विश्वसनीय अनुयायी तथा यशस्वी नाटककार थे, जिन्होंने "शारदा" जैसे रोमांटिक और सामाजिक नाटक लिखे, मंडली के प्रत्येक कार्य को कौशलपूर्वक चला रहे थे। उनके पास 17 वर्षों से प्रतिभाशाली गायक कलाकार भाऊराव कोल्हटकर काम कर रहे थे।

भाऊराव का संगटन देवल के साथ मिलकर काम करने से बहुत शक्तिशाली बन गया था जो मराठी संगीत नाटक पर सन् 1901 तक छाया रहा। जब भाऊराव की भरी जवानी में ही मृत्यु हो गई तो ऐसा लगा कि मंडली अनाथ हो गई। इस दुखद घटना से देवल को इतना आघात पहुंचा कि वह कलाक्षेत्र को लगभग छोड़ ही गया तथा किर्लोस्कर मंडली ने श्रीपद कृष्णा कोल्हटकर के नाटक दिखाकर किसी तरह अपने आपको बनाए रखा। इसके अतिरिक्त मंडली को आंतरिक मामलों में आपसी मतभेद ने घेर लिया।

कुत्ता काटने से ठीक होने के पश्चात बाल गंधर्व फिर से संगीत में लौट आये। मंडली के साथ रहते हुए उनके मिलनसार व्यवहार के कारण उन्हें मंडली के समर्थक का सद्भाव और स्नेह प्राप्त हुआ। किशोर के प्रति छत्रपति का प्यार और प्रशंसा इस संबंध को बढ़ाने का मुख्य कारण सिद्ध हुआ।

उन्हें आये अभी अधिक दिन नहीं हुए थे कि मंडली के पुराने सदस्यों ने बाल गंधर्व से स्वर संगीत गायन प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। पुराने व्यक्तियों की टोली में देवल के अतिरिक्त नानासाहब जोगलेकर, चिंतोबा गुरव, शंकरराव मजूमदार, गणपतराव बोदास और दादा लाडू जैसे प्रसिद्ध विद्वान थे जिनमें से प्रत्येक प्रमुख नाटककार और गायक भी था।

उनके अनुरोध पर गाये गये बाल गंधर्व के गीत ने विवेकशील श्रोताओं के हृदय पर एक गहरी छाप छोड़ी। उनमें से अधिकतर व्यक्तियों को गायक के असाधारण सुंदर व्यक्तित्व में सफल अभिनेत्री के अंश दिखाई दिये।

उन दिनों समस्त कलाकार पुरुष ही होते थे और संगीत नाटक मंडलियों के मालिक सुंदर दिखाई देने वाले मधुर वाणी के धनी नवयुवकों की ताक में रहते थे, चाहे उन्होंने संगीत का व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त न भी किया हो। भाऊराव कोल्हटकर की मृत्यु के पश्चात एक ऐसा अभाव आ गया जिसको पूरा करना किर्लोस्कर मंडली के लिए कठिन हो गया था। इन परिस्थितियों में देवल ने भाऊराव का रिक्त स्थान भरने के लिए बाल गंधर्व को उपयुक्त समझा।

संगीत-सभा के तुरंत बाद जब देवल ने बाल गंधर्व से पूछा कि क्या वे स्त्री गायक के रूप में अभिनय करना पसंद करेंगे तो उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि उन्हें समुचित प्रशिक्षण दिया जाय तो कर लेंगे। इसके अतिरिक्त वह सत्रह वर्षीय किशोर अपने मां-बाप, भाईयों और बहनों के प्रति अपना कर्तव्य पूर्णतया समझता था जो कि घर पर विकट परिस्थितियों से जूझ रहे थे। उनका पिता ऋण के भारी बोझ तले दबा हुआ था, और इससे उनके मन में नारी अभिनय करके धनोपार्जन द्वारा अपने परिवार को सहारा देने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। स्वाभाविक है, देवल का सुझाव, जिसके पीछे उसके सहयोगियों का भी हाथ था बाल गंधर्व के लिए ईश्वरीय वरदान की भांति आया। बाल गंधर्व की सहर्ष सहमति मिल जाने पर देवल ने बाल गंधर्व को अपने संगीत नाटक "शारदा" में मुख्य अभिनय करने के लिए प्रशिक्षण देना आरंभ कर दिया।

यद्यपि मंडली के पुराने सदस्यों को इसमें तनिक भी संदेह नहीं था कि उन्होंने बाल गंधर्व का चुनाव सही किया है, फिर भी इस योजना में एक अड़चन थी—समस्या थी बाल गंधर्व के माता-पिता और परिवार के अन्य बड़े सदस्यों की अनुमति लेने की। शंकरराव मजूमदार उनके माता-पिता के पास जाकर अनुमति प्राप्त करने का कार्य करने के लिए मान गये। इस प्रस्ताव का समर्थन सर्वसम्मति से तत्कालीन विशिष्ट व्यक्तियों ने किया जिनमें लोकमान्य तिलक जैसे राष्ट्रीय नेता और दादा साहब खापर्डे थे और स्वयं छत्रपति साहू भी थे।

जैसा कि पहले ही विदित था, शंकरराव मजूमदार को प्रारंभ में अपना यह कार्य कठिन लगा क्योंकि उसे बाल गंधर्व के परिवार के कड़े आक्षेपों का सामना करना पड़ा, जिनके हृदय में किशोर के लिए अन्यथा कोमल स्थान था। लोकमान्य तिलक के स्पष्ट रूप से यह आश्वासन दिये जाने पर कि नाट्य कलाकार बनने में ही उसका भविष्य उज्ज्वल होगा, यह कार्य संपन्न हुआ।

इसी बीच बाल गंधर्व ने अपना प्रशिक्षण अभ्यास आरंभ कर दिया। मंडली के प्रमुख व्यक्तियों की उपस्थिति में "शारदा" के प्रारंभिक दृश्य का मंच पर पूर्वाभ्यास द्वार बंद कर के किया गया। रूपक में सूत्रधार और नटी का दृश्य था तथा बाल गंधर्व को नटी का अभिनय करने का कार्य गणपत राव बोदास तथा चिंतेबा गुराव ने किया था। बाल गंधर्व की मां जो कि पूर्वाभ्यास के समय विशिष्ट अतिथि थी, अपने पुत्र का अभिनय देखकर भाव विह्वल हो उठी। मंडली के पुराने सदस्यों ने उनके उत्कृष्ट अभिनय का स्वागत किया और प्रारंभ में ही नाटक मंडली के साथ बाल गंधर्व का साहचर्य महत्वपूर्ण बन गया तथा मराठी रंगमंच पर उनके उज्ज्वल भविष्य का शुभारंभ हो गया।



5

उत्कर्ष की खोज में

बाल गंधर्व ने किर्लोस्कर मंडली के "शाकुंतल" नाटक में प्रमुख पात्र का अभिनय करके गायक-|अभिनेता के रूप में श्रीगणेश किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे देवल थे जिन्होंने उन्हें इस भूमिका के लिए चुना था। देवल का चुनाव केवल उपयुक्त ही नहीं अपितु अत्यधिक समयानुकूल भी था। इस प्रकार युवा अभिनेता-गायक को किर्लोस्कर नाटक मंडली के ध्वज तले अपना प्रथम अभिनय करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ। इसलिए मंडली के पुराने सदस्य उन्हें पूर्णतया व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रशिक्षण दिलाने की ओर अग्रसर हुए।

बाल गंधर्व का यह परम सौभाग्य था कि रंगमंच के अभिनय क्षेत्र में प्रथम पथप्रदर्शक के रूप में देवल जैसे प्रतिभासंपन्न व्यक्ति को पा सके। निस्संदेह प्रख्यात नाटककार होने के साथ-साथ देवल उदीयमान प्रतिभा संपन्न कलाकारों को संपूर्ण प्रशिक्षण प्रदान करने में भी सिद्धहस्त थे। वे स्वाभाविक अभिनय करने की योग्यता पर विशेष बल देते थे। इतना ही महत्व वे इस बात पर देते थे कि रंगमंच संगीत पूर्णतया अभिनय करने वाले पात्र की मनोदशा के अनुकूल होना चाहिए या दृश्य के चरित्रानुकूल या उस स्थिति के अनुकूल होना चाहिए जिसे गायक-अभिनेता प्रस्तुत कर रहा हो। एक बात और, देवल कलाकारों को पुरुष और स्त्री दोनों का ही अभिनय सिखाने में समान रूप से सिद्धहस्त थे। उनके प्रशिक्षण प्रदान करने के ढंग की संपूर्णता का अनुमान उस ख्याति से लगाया जा सकता है जो उनके आश्रित गणपतराव बोदास को न केवल प्रमुख नाटककार, अपितु रंगमंच अभिनय के प्रख्यात प्रशिक्षक के रूप में मिली।

"शाकुंतल" मिराज नरेश की उपस्थिति में एक नवनिर्मित रंगशाला में खेला गया। इसका प्रचार मंडली के प्रबंधकों ने पहले ही कर दिया था जिसमें यह घोषणा विशेष रूप से की गई थी कि प्रमुख भूमिका नारायणराव राजहंस या बाल गंधर्व निभा रहे हैं। रंगमंच प्रेमियों के मन में इससे विशेष रुचि तथा उत्साह उत्पन्न हुआ।

पर्दा उठने से एक घंटा पहले ही नाट्यकला कक्ष खचाखच भर गया। जैसे ही बाल

गंधर्व शकुंतला के रूप में अपनी सखियों से घिरे हुए मंच पर आये, तो चारों ओर से दर्शकों की तालियों की ध्वनि गूंजने लगी। पहली बार अभिनय करने के लिए मंच पर जाकर भयभीत होने का कोई लक्षण उनमें नहीं दिखा। यद्यपि ऐसा समझा जा सकता है कि प्रारंभिक कुछ क्षण उन्हें घबराहट हुई होगी। प्रथम प्रदर्शन में विश्वस्त होने के लिए उन्होंने कम समय लिया, जैसे - जैसे नाटक आगे बढ़ा उनका विश्वास प्रत्येक दृश्य और प्रत्येक अंक में बढ़ता चला गया। अपनी प्रभावशाली भंगिमाओं द्वारा उन्होंने कभी भंवरे से डरने का व कभी प्रेमिका के भावों—लज्जाशील कुंआरी से लेकर प्यार की कसक—का अभूतपूर्व अभिनय किया। उनके गीत गाने की कला भी उतनी ही श्रेष्ट थी। उनके लिए तो सर्वोत्तम क्षण थे ही, किर्लोस्कर मंडली के लिए भी उतने ही सर्वोत्कृष्ट थे।

मंडली के पुराने सदस्यों में गर्व, हर्षोल्लास देखते ही बनता था। उनके लिए बाल गंधर्व का आविर्भाव गहरे हर्ष का विषय था क्योंकि उन्हें प्रभावशाली ढंग से चलने में नये कलाकार में उस व्यक्ति की झलक दिखाई दी जो उस अभाव की पूर्ति कर सकता था जो चार वर्ष पूर्व भाऊराव कोल्हटकार की अचानक मृत्यु से आ गया था।

अपने प्रथम अभिनय की असाधारण सफलता से उत्साहित होकर बाल गंधर्व देवल द्वारा लंबे समय तक प्रशिक्षण प्राप्त करने के अपने हृदय में चिरकाल से सजाए हुए स्वप्न को साकार करने में लग गये, जो संभवतः उन्हें चरित्र-अभिनय के विभिन्न पहलुओं का प्रशिक्षण देते। किंतु दुर्भाग्यवश देवल ने अपने सहयोगी शंकरराव मजूमदार से गंभीर मतभेद हो जाने के कारण एकाएक किर्लोस्कर मंडली छोड़ दी।

लेकिन फिर भी सब कुछ समाप्त नहीं हुआ था। मंडली में चिंतोबा गुराव और गणपतराव बोदास जैसे और भी गुरु थे जिन्होंने देवल के साथ रहकर और उसके प्रशिक्षण देने की तकनीक के सर्वोत्तम नुक्तों को पूर्णतया सीखकर लाभ उठाया था। इसलिए बाल गंधर्व की कला को संवारने का उत्तरदायित्व समान रूप से मंडली के इन दो पुराने सदस्यों पर आ पड़ा। उनके नेतृत्व में बाल गंधर्व ने एक से बढ़कर एक विभिन्न नारी भूमिकाएं निभायीं — जैसे कोल्हटकर के "गुप्ता-मंजूष" में नंदिनी या किर्लोस्कर के नाटक "सुभद्रा" में सुभद्रा या देवल के "मृच्छकटिका" में वसंतसेना तथा अनेक अन्य नाटकों में कलाकार के रूप में कार्य किया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि उनका किर्लोस्कर मंडली में पदार्पण बाल गंधर्व के लिए लोकप्रसिद्ध श्रेष्टता की खोज में महत्वपूर्ण शुरूआत थी।

शीघ्र ही मंडली मिराज से पुणे चली गई। मंडली में काफी बदलाव और सुखद भविष्य की निश्चिंतता के कारण मंडली के सदस्यों ने मंडली की रजत जयंती मनाने पर पुनः विचार करने का निर्णय किया। यहां पर उल्लेखनीय है कि रजत जयंती मनाने का वास्तविक वर्ष 1905 था किंतु निराशाजनक परिस्थितियों के कारण जयंती मनाने का विचार त्यागना पड़ा।

उत्सव का प्रारंभ "गुप्ता - मंजूष" नाटक दिखाकर किया गया जिसमें बाल गंधर्व को नायिका की भूमिका में प्रस्तुत किया गया था। जैसी आशा थी, इससे पुणे के रंगमंच प्रेमियों

में तीव्र उत्साह की भावना उत्पन्न हुई, विशेषतया इसलिए क्योंकि वे मिराज में "शाकुंतल" नाटक में उनके प्रथम अभिनय की सफलता के विषय में सुन चुके थे। "गुप्ता-मंजूष" में उनकी भूमिका देखने की उन्हें उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा थी। दूसरे इसलिए भी, क्योंकि उन्हें रंगमंच पर प्रथम बार देखा था। मिराज की भांति ही बाल गंधर्व ने पुणे के दर्शकों को भी अपनी प्रत्येक अभिनय प्रस्तुति के दौरान मंत्रमुग्ध कर लिया। उन्होंने "गुप्ता-मंजूष" के बाद रंगमंच पर आए नाटकों में विभिन्न भूमिकाएं निभायीं जिनमें "सुभद्र", "मूकनायक", "मति - विकार" तथा "प्रेम - शोधन" भी थे।

मंडली के पुणे में रहने के दौरान एक विशेष घटना यह हुई कि बाल गंधव की गोबिंदराव तेम्बे से भेंट हो गई जिसने बाद में प्रतिभा संपन्न हारमोनियम वादक, अभिनेता - गायक, संगीतकार, नाटककार और आलोचक के रूप में ख्याति अर्जित की थी। उसे आने वाले कई वर्षों तक विविध रूपों में नाट्यकला से जुड़े रहने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

पुरानी पीढ़ी के सुविज्ञ पारखी व्यक्तियों के कथनानुसार, बाल गंधर्व की प्रतिभा उनके "प्रेम-शोधन" नाटक में अभिनय करने से उजागर हुई। यद्यपि वे मर्मस्पर्शी वाणी, मुखर अभिव्यक्ति और मोहक व्यक्तित्व के धनी थे परंतु पुराने अनुभवी व्यक्तियों का कहना था कि वे अपनी प्रतिभा के शिखर पर तभी पहुंच सके जब उन्हें "प्रेम-शोधन" नाटक में काम करने से पहले प्रमुख अनुभवी व्यक्तियों ने पांच वर्ष तक कड़ा प्रशिक्षण दिया। बाल गंधर्व की महानता इसमें निहित थी कि उन्होंने प्रशिक्षण में निरंतर अभ्यास समर्पण भाव से किया।

बाल गंधर्व का विवाह 1907 में हुआ। उन दिनों अभिनय करने वाले कलाकारों के लिए विवाह एक कठिन समस्या थी – चाहे वे संगीतकार हों, चाहे अभिनेता या नर्तक। ऐसे व्यवसाय के सदस्यों के साथ विशेषतया एक सामाजिक लांछन लगा हुआ था। समाज के रूढ़िवादी वर्ग के लिए वे अभिशाप थे तथा बाल गंधर्व जैसे ब्राह्मण गायक कलाकार के लिए तो यह लांछन और भी अधिक था।

अद्भुत सत्य है कि बाल गंधर्व का विवाह कराने के लिए जितने उनके माता-पिता उत्सुक थे उतने ही उत्सुक मंडली के प्रबंधक भी थे। उनके पिता सेवा-निवृत हो चुके थे और उन्हें पेंशन एक पैसा भी नहीं मिल रही थी। वस्तुतः उनके मां-बाप अपने पुत्र के लिए उसके अनुरूप जीवन साथी की खोज में थे। किंतु मंडली के सदस्यों ने इस बारे में जोर दिया और उनका विवाह एक सांवली, देखने में साधारण लड़की लक्ष्मीबाई से करवा दिया जोकि उनके परिचित पडगांवकर परिवार की थी।

6



कीर्ति यात्रा पर अग्रसर

किर्लोस्कर मंडली के साथ बाल गंधर्व मिराज से पुणे और पुणे से बंबई, एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहे, विभिन्न शहरों और कस्बों का दौरा करते हुए वे बंबई प्रेजीडेंसी में बेलगाम, हुबली, शोलापुर, बरसी, कोल्हापुर, अहमदनगर, नासिक और जलगांव तथा अकोला जैसे प्रमुख संस्कृति-प्रिय केन्द्रों में भी गये, जो पुराने केन्द्रीय प्रांतों तथा बरार का एक भाग थे। ये व्यावसायिक भ्रमण, उनके सन् 1906 में मंडली में सम्मिलित होने से चार वर्ष तक चलते रहे जिन्हें उनकी "विजय यात्रा" का एक भाग कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि इस अवधि में वे जहां कहीं भी गये उन्होंने रंगमंच प्रेमियों के मन-मस्तिष्क को जीत लिया। व्यावसायिक तौर पर, अलौकिक अभिनय प्रतिभा एवं संगीत कला संपन्न बाल गंधर्व के नेतृत्व में इस मंडली पर इन यात्राओं में इतनी अधिक धन-वर्षा हुई जितनी इस क्षेत्र में पहले कभी नहीं हुई थी।

इस अवधि के दौरान ही बाल गंधर्व के भावी जीवन में रंगमंच कलाकार बनने की ठोस नींव रखी गयी। और उनकी प्रतिभा रंगमंचीय परंपरा से संवर्द्धन प्राप्त कर फलने फूलने लगी थी। इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा।

बाल गंधर्व को उनकी अद्वितीय प्रतिभा के कारण गायन में उतनी ही लोकप्रियता मिली जितनी कि उन्हें रंगमंच पर अभिनय द्वारा मिली थी। उनके हृदय और मस्तिष्क के गुणों से उत्पन्न प्रेम के कारण उनके अभिनय को देखने वालों की निरंतर वृद्धि होती रही। उनको रंगमंच पर देखने वालों में युवा पीढ़ी के प्रशंसक अधिक थे, विशेषतया कालेज के विद्यार्थी, जिनमें उनके वास्तविक जीवन में एक दूसरे के निकट आने की होड़ लग गयी थी। यदि रंगमंच पर उनकी स्त्री की भूमिका ने उनके किशोर मन को गुदगुदाया, तो सुनने में मधुर और गाने में सरल, उनके गीत इतने लोकप्रिय हुए जितने हमारी फिल्मों के आज के गीत। उनकी आवाज लाखों में एक थी जिसने प्रत्येक को आश्चर्यचकित कर उन्हें बहुत जल्दी सर्वत्र लोकप्रिय बना दिया।

बाल गंधर्व की व्यवहार कुशलता से मित्रों का मन जीतने की कला का पता इस बात

से चलता है कि वे अपना खाली समय कालेज के विद्यार्थियों की संगति में व्यतीत करते थे। वे उन्हें अनौपचारिक सभाओं में उनके पुराने मनपसंद गीत गाने का अनुरोध करते थे। उनके अनुरोध को उन्होंने कभी नहीं ठुकराया। अपितु वे तो ऐसी अनौपचारिक संगीत-गोष्ठियों को मित्रता तथा सद्भावना का प्रतीक मानते थे तथा अपने किशोर श्रोताओं के सामने अपने गायन की प्रस्तुति करते थे।

बाल गंधर्व को रंगमंच पर उनके जीवन में आरंभ से ही जो श्रद्धा सम्मान मिला उससे वे घमंडी नहीं हुए। वे मंडली में काम करने वाले प्रत्येक सदस्य के परमप्रिय थे। मंडली के कार्य संचालन में धुरी का काम करने वाले नाना साहेब जोगलेकर तथा शंकरराव मजूमदार जैसे पुराने सदस्यों के प्रति उनके मन में गहन श्रद्धा और कृतज्ञता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उन्होंने कभी भी उनकी सहर्ष स्वीकृति के बिना किसी संगीत समारोह का निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। उनके गुरूजन भी उस बालक के सामान्य आचरण में आज्ञाकारिता और अनुशासन की भावना की प्रशंसा करते थे। उनके संबंध भी बाल गंधर्व सरीखे किशोरों से स्नेहिल एवं आत्मीय थे। वे भी उनका इतना आदर सम्मान करते थे जितना एक बच्चा अपने मां-बाप तथा शिक्षकों का करता है।

इससे ऐसे विशिष्ट गुण का स्मरण होता है जो सामान्य रूप से मराठी रंगमंच तथा विशेष रूप से किर्लोस्कर नाटक मंडली में उन शांतिपूर्ण दिनों में विद्यमान था। मंडली के साझेदारों, अभिनेताओं, संगीतकारों और नाटककारों के बीच असाधारण सामंजस्य बना रहने के कारण उनके सामूहिक प्रयास से उन्हें रंगमंच पर एक के बाद एक उत्कृष्ट सफलतायें मिलतीं चलीं गयीं। वस्तुतः, "संगीत नाटक" को बनाए रखने और समृद्ध करने का कार्य किर्लोस्कर, देवल और कोल्हटकर जैसे नाटककारों, वाधोलीकर, नाटेकर, भास्करबुवा बाखले और गोविंदराव तेम्बे जैसे निष्ठावान गीतकारों और संगीतकारों, तथा चिन्तोबा गुराव और गणपतराव बोदास जैसे नाट्यकला प्रशिक्षकों के मैत्रीपूर्ण एवं संयुक्त प्रयास से ही संभव हो सका। आगामी वर्षों में भी मंडली के संपर्क में जो भी आये सब आपस में निरंतर मित्रता की भावना से ओतप्रोत रहे।

कृष्णाजी प्रभाकर उर्फ काकासाहेब खादिलकर जिनका किर्लोस्कर मंडली से संबंध पहले प्रशिक्षक के नाते और फिर 1910 से आगे एक नाटककार के रूप में रहा, उन निष्ठावान समर्थकों में से एक थे जो मंडली की सफलता में सहायक हुए। तिलक के समाचार पत्र "केसरी" में संपादक का कार्य करने के कारण खादिलकर तिलक के केवल निकट सहयोगी ही नहीं बने अपितु उन्होंने सशक्त नाटककार एवं निर्भीक स्वतंत्रता-सेनानी के रूप में भी यश कमाया।

खादिलकर ने किर्लोस्कर मंडली को अपनी सेवायें पहले कोल्हटकर के नाटक "प्रेम-शोधन" के लिए प्रशिक्षक के रूप में दी। इससे बाल गंधर्व को खादिलकर के संपर्क में आने का प्रथम सुअवसर प्राप्त हुआ। इससे दोनों में एक ऐतिहासिक अनुबंध नियत हुआ जो वर्षों चलता रहा।

अभी "प्रेम-शोधन" नाटक का पूर्वाभ्यास चल ही रहा था कि खादिलकर ने, जो कि तब तक गद्य नाटकों के लेखक के नाम से ही जाने जाते थे, निर्णय किया कि वे संगीत-नाट्य लेखन में पदार्पण करेंगे और उन्होंने अपने प्रसिद्ध संगीत नाटक "मान-अपमान" की पांडुलिपि तैयार भी कर ली। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि उन्होंने अपनी कहानी अधिकांशतया बाल गंधर्व के अनुकूल लिखी थी। उन्होंने गीतों की धुन बनाने का कार्यभार गोबिंदराव तेम्बे को सौंपा जो कि स्वयं शिक्षित प्रतिभावान अग्रगणी हार्मोनियम वादक, प्रवर्तक; रचनाकार, अभिनेता एवं नाटककार के रूप में प्रसिद्ध थे।

तेम्बे जितने आविष्कारक थे उतने ही ग्रहणशील भी थे, और उन्होंने जो सब सीखा वह किसी नियमित या व्यावसायिक प्रशिक्षक के मार्गदर्शन द्वारा नहीं, अपितु उस समय के संगीत और नाटक के क्षेत्र की महान विभूतियों के साथ लंबे समय तक रहकर प्राप्त किया। उन्होंने शास्त्रीय संगीत और सुगम संगीत की विविध पद्धतियों और प्रवृतियों के प्रभावों तथा मुद्राओं को आत्मसात कर लिया। यह कला विशेषतया गौहरजान, अल्लादिया खान और भास्करबुवा बाखले जैसे शिक्षक गायकों, तथा वरकतुल्ला खान जैसे वाद्य संगीताचार्य की थी जिन्होंने तेम्बे के संगीतज्ञ व्यक्तित्व को चिरस्थायी गढ़कर सुगठित रूप प्रदान किया। उन्होंने "मान-अपमान" के गीतों को जो विविध धुनें प्रदान कीं उनमें इन सबकी गहराई, प्राचुर्य और विविधता से प्रतिबिंत होती है। बाल गंधर्व के संगीत द्वारा तेम्बे के अंतर्ज्ञान और विचारों को सर्वश्रेष्ट भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त हुई।

प्रथम प्रदर्शन जो कि 12 मार्च 1911 को होना निश्चित हुआ, जिसमें बाल गंधर्व को अभिनेत्री भामिनी का अभिनय करना था, दुखद वातावरण में हुआ था। दुखद घटना यह थी कि बाल गंधर्व के सबसे बड़े बच्चे की उसी दिन अचानक मृत्यु हो गयी। प्रथम प्रदर्शन, जिसकी घोषणा पहले ही की जा चुकी थी, अनेक कारणों से एक चुनौती था — एक तो इसलिए क्योंकि यह खादिलकर का पहला संगीत-नाटक था और दूसरे इसलिए क्योंकि यह यशस्वी किर्लोकर मंडली द्वारा रंगमंच पर अभिनीत किया जाना था जिसमें अत्यंत लोकप्रिय बाल गंधर्व को अभिनेत्री का अभिनय करना था।

परिवार का यह दुर्भाग्यपूर्ण समाचार तुरंत चारों ओर फैल गया। मंडली के प्रबंधकों ने ही नहीं अपितु बाल गंधर्व के अनेक चाहने वालों ने भी उनसे विनती की थी कि उस दिन का प्रदर्शन जिसमें उन्हें प्रमुख अभिनय करना था, स्थगित करें। कलादेवी के प्रति और अपने संरक्षकों के प्रति उनकी श्रद्धा का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने प्रदर्शन स्थगित करने से विनम्रतापूर्वक मना कर दिया। एक सच्चे योगी की मुद्रा में उन्होंने धैर्यपूर्वक कहा "प्रदर्शन अवश्य होगा। दुखद घटना मेरे परिवार में हुई है। किंतु इससे मैं अपने संरक्षकों के प्रति और अपने श्रद्धेय दर्शकों के प्रति अपना कर्तव्य नहीं भूल सकता"।

और जैसे - जैसे नाटक चलता गया, बाल गंधर्व ने इतना सजीव अभिनय किया, कि उनके दर्शक रो पड़े। क्या कला के प्रति समर्पण की भावना का ऐसा अद्वितीय कोई और

उदाहरण मिल सकता है?

यह तो एक दुखद घटना थी, इस प्रकार के और भी बहुत से शोकपूर्ण अवसर उस महान प्रतिभा के समस्त जीवन एवं व्यवसाय में गतिरोध उत्पन्न करने के लिए आते रहे। लेकिन उनसे वे अपने अनन्य निष्ठा पथ से विचलित नहीं हुए।

"मान - अपमान" ने अनेक प्रकार से कीर्तिस्तंभ स्थापित किये। यह संगीत - नाटक नाटककार खादिलकर के व्यवसाय में एक नया मोड़ प्रमाणित हुआ। जहां तक इसके मूल विषय, अंतर्विषय तथा चरित्र - चित्रण का संबंध है इस नाटक ने इस क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये। नायिका के रूप में बाल गंधर्व के लिए, तथा अन्य प्रमुख पात्रों, जैसे नानासाहेब जोगलेकर (जिन्होंने नायक धैर्यधर का अभिनय किया) और गणपतराव बोदास (जिन्होंने लक्ष्मीधर के रूप में अभिनय किया), के लिए इस नाटक ने उनकी बहुचर्चित अभिनय प्रतिभा की अभिपुष्टि की। इतना ही महत्वपूर्ण यह तथ्य भी है कि इस नाटक से उन लोगों में भी रंगमंच के प्रति निरंतर रुझान उत्पन्न होने लगा था जो मराठी - भाषी क्षेत्रों के नहीं थे। शीघ्र ही "मान-अपमान" तथा अन्य संगीत नाटकों ने मराठी प्रशंसकों के अतिरिक्त गुजराती, सिंधी और कन्नड़ प्रशंसकों को आकर्षित करना शुरू किया। इन रंगमंच प्रेमियों का एक बड़ा वर्ग धनी एवं सुसंस्कृत परिवारों के युवावर्ग का प्रतिनिधित्व करता था। उस समय की ग्रामोफोन रिकार्ड कंपनी ने देश के अनेक भागों में बाल गंधर्व के गीतों की निरंतर बढ़ती हुई मांग को देखकर उनके गीतों के रिकार्ड व्यापारिक दृष्टि से बनाने के लिए उन्हें अनुबंधित किया।

"मान-अपमान" जिस कारण से विशिष्ट बना वह था उसका श्रेष्ट और ग्रहणशील संगीत जिसका निर्माण गोबिंदराव तेम्बे ने उसके गीतों के लिए किया था। कुछ वर्ष बाद, बाल गंधर्व ने यह नाटक केशव राव भोसले (जो एक अन्य मंडली का प्रमुख था) के साथ "महात्मा गांधी के तिलक स्वराज फंड" को सहायता पहुंचाने के लिए रंगमंच पर अभिनीत किया। भोसले जो कि नायक था, उसके साथ नायिका रूप में आने पर बाल गंधर्व को पछताना पड़ा क्योंकि उन्हें लगा कि भोसले का पुरुषोचित स्वर उनकी कन्योचित वाणी के साथ खटक रहा था। लेकिन फिर भी नाटक सफल रहा, और अपनी निजी मंडली बनाने के बाद भी बाल गंधर्व ने इसे रंगमंच पर प्रस्तुत करने में रुचि ली जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे।

लगभग उसी समय, 1901 में, नानासाहेब जोगलेकर पर पीलिया के आक्रमण से 36 वर्ष की युवा आयु में उनकी दुखद मृत्यु हो जाने के कारण, मंडली को गहरा आघात पहुंचा। जोगलेकर केवल सर्वोच्च नाटककार ही नहीं अपितु मंडली के स्तंभ भी थे जिन्होंने शंकरराव मजूमदार के साथ मंडली के कार्य संचालन में अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था।

उनकी मृत्यु हो जाने से जो कमी आई उसे पूरा करना कठिन तो था ही, उत्तराधिकार की समस्या भी उत्पन्न हो गई जिसका अंतिम परिणाम यह निकला कि उनके बचे हुए समर्थकों में मतभेद उत्पन्न हो गया।

7



किर्लोस्कर मंडली से निकल जाना

नाना साहेब जोगलेकर के देहांत के बाद जिन्होंने मंडली के कामकाज को आगे बढ़ाना था, उनके बीच उत्तराधिकार की समस्या को लेकर अनेक गलतफहमियां, संशय एवं संदेह उत्पन्न हो गये। ऐसा प्रतीत होता था कि विशेषतया खादिलकर और बाल गंधर्व इस आवश्यकता को समझते थे कि किर्लोस्कर मंडली का कार्यक्रम चलता रहे। यहां तक कि जब मंडली में अंदर ही अंदर बहुत गड़बड़ फैली हुई थी, खादिलकर चुपचाप अपने शिष्यों को "विद्याहरण" और "स्वयंवर" नाटकों में क्रमशः "देवयानी" तथा " रुक्मिणी" के अभिनय का प्रशिक्षण देने में लगे हुए थे। ये नये संगीत रूपक थे जिन्हें एक के बाद एक किर्लोस्कर मंडली के ध्वज तले अभिनीत करने की योजना थी, इसके साथ-साथ "मान-अपमान" का भी पुनः प्रदर्शन किया गया जिसे रंगमंच प्रेमी कभी भी, कहीं भी दिखाये जाने पर थकते नहीं थे। वस्तुतः यह "मान-अपमान" की अभूतपूर्व सफलता थी जिसने खादिलकर को नये नाटक लिखने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जिनमें नायिका का अभिनय करने के लिए बाल गंधर्व सदैव तैयार रहते थे।

इस दौरान शंकर राव मजूमदार, गणपतराव बोदास और बाल गंधर्व को किर्लोस्कर मंडली का हिस्सेदार बनाने से हिस्सेदारी का प्रश्न अस्थायी तौर पर हल हो गया। लेकिन उपयुक्त नायक को ढूंढने के प्रयास से संतोषजनक चुनाव न हो सका। बाहरी क्षेत्र से भी अनेक नवयुवकों को आजमाया गया। जब सब असफल हो गए, तो सर्वसम्मति गोबिंदराव तेम्बे के पक्ष में पायी गयी जो कि "मान-अपमान" के लिए संगीत तैयार करके संगीत-निर्देशक के रूप में पहले ही नाम कमा चुका था। स्वयं बाल गंधर्व भी नायक के अभिनय के लिए तेम्बे का चुनाव करने के प्रबल पक्ष में थे। "मान-अपमान" में धैर्यधर की सफल भूमिका ने ही उनके नायक बनने का मार्ग प्रशस्त किया। "विधाहरण" में उनका कच के रूप में अभिनय जो बाल गंधर्व के साथ किया गया, जिसमें बाल गंधर्व ने देवयानी की भूमिका निभाई, रंगमंच प्रेमियों के लिए लोकप्रिय बन गया। "मान-अपमान" के बाद वह दूसरा नाटक था जिसकी देखने वालों ने समान प्रशंसा की थी।

नाटक का प्रथम प्रदर्शन बाल गंधर्व पर कुछ कटुता की छाप छोड़ गया क्योंकि पात्रों के लिए चुनी गई वेशभूषा से वे संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने कम मूल्य को ध्यान में रखकर वेशभूषा खरीदने के परिवर्तन के लिए शंकरराव मजूमदार को उत्तरदायी ठहराया जो कि बहुत प्रभावशाली अनुभवी व्यक्ति थे और स्पष्टतया जिनका निर्णय ऐसे मामलों में अंतिम माना जाता था। बाल गंधर्व की इस बात पर खादिलकर ने तुरंत उनका साथ दिया। मामला शीघ्र ही बिगड़ गया, परिणामतया एक ओर मजूमदार तथा दूसरी ओर खादिलकर-बाल गंधर्व, दोनों में तीखी मौखिक बहस हुई।

मजूमदार की स्थिति को समझने के लिए यह याद रखना अवश्य न्यायोचित होगा कि वे किर्लोस्कर के संपर्क में मंडली के प्रारंभ से ही रहे। वस्तुतः, भाऊराव कोल्हटकर के आने से पहले, वे मजूमदार ही थे जिन्होंने शकुंतला का अभिनय किया। वे बहुत पढ़े-लिखे थे और अंग्रेजी भाषा में दक्ष थे। लेखन उनकी जन्मजात प्रवृति थी और उन्होंने मराठी नाटक के क्षेत्र में बहुत अच्छा जीवनी साहित्य लिखा था। यद्यपि किर्लोस्कर मंडली से उन्होंने संबंध विच्छेद **1884** में कर लिया था, किंतु नौ वर्ष बाद वापिस आकर उन्होंने मंडली की प्रबंध व्यवस्था फिर से संभाल ली।

मजूमदार का यह सपना था कि किर्लोस्कर मंडली अन्य आने वाली मंडलियों के लिए एक आदर्श बने। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर, उन्होंने "रंग-भूमि" नाम की एक मासिक पत्रिका प्रारंभ की जिसने **1905** में हुए सर्वप्रथम नाटक उत्सव का प्रचार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनका दृढ़ विश्वास था कि समाज से संपर्क लाभदायक होता है तथा उन्होंने मंडली के कल्याण और समृद्धि के लिए प्रभावशाली एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों से अपना संपर्क बनाए रखा।

मंडली के प्रवर्तकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मजूमदार ने कठोर परिश्रम किया और पुणे में पवित्र किर्लोस्कर नाट्यशाला बनवाने में सफल हुए। इसका उद्घाटन वर्ष **1909** में बहुत धूमधाम से हुआ।

फिर भी, वित्तीय साधनों का सही ढंग से प्रयोग न करने के कारण इस योजना ने मंडली को ऋणी बना दिया। इस संकट से पार पाने का केवल एक ही उपाय था कि दिन प्रतिदिन के खर्च में आंडबरहीनता और मितव्ययिता का पालन किया जाय। कुछ समकालीन व्यक्तियों के कथनानुसार, यद्यपि मजूमदार के इरादे नेक होते थे किंतु प्रायः उसके कार्यों का गलत अर्थ निकाला जाता था। "विद्याहरण" के लिए वेशभूषा का चुनाव करने में की गई तथाकथित कंजूसी के कारण उनका बहुत विरोध हुआ।

यह अंदाजा नहीं लगाया जा सकता था कि मजूमदार, खादिलकर और बाल गंधर्व, तीनों में "विद्याहरण" की वेशभूषा के चुनाव पर हुई गरमागरमी इतना गंभीर मोड़ ले लेगी। कई वर्षों के उपरान्त मंडली में हुईं अनेक अप्रिय घटनाओं ने उनके संबंधों को बिगाड़ने का कार्य किया। तीन व्यक्तियों के समूह ने जिनमें बाल गंधर्व, तेम्बे और बोदास थे, उन्होंने मंडली में लगाए गए वित्तीय प्रतिबंधों पर प्रतिकूल मत प्रकट किया और एकमत से **19**

जून 1913 को किर्लोस्कर मंडली छोड़ने का निर्णय किया।

जैसी आशा थी, इस निर्णय की घोषणा से समस्त प्रदेश में दुख की लहर दौड़ गई। मंडली के शुभचिंतक प्रभावशाली व्यक्तियों ने आपस में लड़ने वाले दलों के बीच पुनर्मेल करवाने के भरसक प्रयत्न किये। लोकमान्य तिलक जो उस समय बर्मा की मांडले जेल में थे, उनकी अनुपस्थिति में सुप्रसिद्ध लेखक एवं राजनीतिज्ञ एन० सी० केलकर ने अपने परामर्शदाता की ओर से इस आशा से अनुनय करने का प्रयत्न किया कि मंडली को संकट से निकालने का कोई मार्ग निकल आए। वस्तुतः यह बहुत गंभीर संकट था क्योंकि बचे हुए सदस्यों के लिए वह प्रतिष्ठित संस्था, जिसे मराठी कला और संस्कृति का प्रतीक माना गया है, की प्रगति एक चुनौती बन गई थी। किंतु जो दैवनिर्दिष्ट था उसे बदला नहीं जा सका। "विद्याहरण" के प्रथम प्रदर्शन के लगभग एक सप्ताह के भीतर ही मंडली का विघटन हो गया।



8

गंधर्व नाटक मंडली

मंडली से निकल कर आये समूह जिसमें बाल गंधर्व, गणपतराव बोदास और गोबिंदराव तेम्बे थे, ने शीघ्र ही अपनी मंडली बना ली। यद्यपि बाल गंधर्व 25 वर्ष के होने के नाते मंडली में सबसे छोटे थे, परंतु वे मंडली के न केवल नेता ही थे अपितु इस नये अभियान को आगे बढ़ाने के पीछे उनकी ही भावना थी। चूंकि तीनों प्रमुख किर्लोस्कर मंडली की परंपरा को बनाये रखने के उत्सुक थे, इसलिए प्रारंभ में नयी मंडली का नाम "न्यू किर्लोस्कर नाटक मंडली" रखने का विचार बना था। फिर भी, अंतिम चयन एकमत से "गंधर्व नाटक मंडली" के नाम का हुआ, जिसका सुझाव खादिलकर ने दिया था और एन सी केलकर ने समर्थन किया।

इस टोली ने मंडली का आरंभ संयुक्त साझेदारी में किया था इसलिए यह भययुक्त आशंका के बिना नहीं थी। प्रारंभ में साझेदारों को कुछ शंकाएं थी कि बहुत कठिनाई से प्रसन्न किये जा सकने वाले रंगमंच प्रेमियों की प्रतिक्रिया क्या होगी। फिर भी, वे इस सत्य को नहीं समझते थे कि पुराने संगठन को प्रतिष्ठा और ख्याति दिलाने वाले बाल गंधर्व ही थे।

यह सच है कि नयी संस्था ने रंगमंच प्रिय वातावरण में हल्की सी हलचल मचा दी। किंतु यह शीघ्र ही समाप्त हो गयी क्योंकि रंगमंच प्रेमियों का विश्वास था कि विघटित मंडली हर प्रकार से किर्लोस्कर परंपरा को बनाये रखने के लिए दृढ़ संकल्प है। मंडली द्वारा एक के बाद एक खेले गये नाटकों ने यथेष्ट रूप में प्रमाणित कर दिया कि मंडली नयी प्रेरणा, विश्वास और दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध है।

मंडली की प्रगति में दूसरी बाधा थी आर्थिक साधनों की कमी। यह सच है कि इस मंडली का प्रारंभ बचे-खुचे धन को बटोर कर किया गया था। नाटकों के प्रदर्शन पर होने वाले भारी खर्च को वहन करने के लिए उस समय पर्याप्त पूंजी की आवश्यकता थी ताकि प्रदर्शन बिना रुकावट चलता रहे। इस अवसर पर प्रबंधक बाला साहेब पंडित की पटुता उन्हें बचा गयी। बाल गंधर्व के एक प्रशंसक के पद का लाभ उठाकर उन्होंने 7000 रुपये

का ऋण प्राप्त कर लिया।

गंधर्व मंडली की प्रगति में एक बाधा और भी थी जो कि उतनी ही जटिल किंतु उससे भी अधिक दुर्जेय थी। अपने भावी समर्थकों का मन जीतने की उत्सुकतावश, साझेदारों ने किर्लोस्कर मंडली के पूर्ववर्ती लोकप्रिय संगीत नाटकों को प्रदर्शित करने का निर्णय किया। इसके लिए प्रबंधक, शंकरराव मजूमदार से पूर्व अनुमति प्राप्त करनी थी जो उन्हें पहले ही नोटिस देकर मना कर चुका था। बहुत बातचीत और अनुनय करने पर बुद्धिमान परामर्शदाता सफल हुए तथा अन्ततः साझेदारों ने पुराने लोकप्रिय नाटकों का प्रदर्शन करने के अधिकार प्राप्त कर लिए।

नयी मंडली को सुचारू रूप से चलाने के लिए साझेदारों ने पांच प्रतिष्ठित सदस्यों की एक सलाहकार समिति बनायी जो कामकाज की व्यवस्था करने में उन्हें उचित मार्गदर्शन एवं निर्देश देती थी। इस समिति में एन०सी०केलकर, पी०एस० लाड तथा डी एल वैद्य थे जिनमें से अंतिम दो बंबई के न्यायाभिकर्ता थे, तथा आबासाहेब विंचुरकर, बालासाहेब धारकर और बालासाहेब पंडित थे जिनका सबका संबंध कला प्रिय अभिजात वर्ग से था।

इसी बीच, गंधर्व मंडली किर्लोस्कर के पुरातन ख्यातिप्राप्त नाटकों की शृंखला दिखाकर सफलता प्राप्त करती हुई आगे बढ़ती गयी। मंडली की विजय यात्रा का समाचार दूर दूर तक देश के केन्द्रीय और पश्चिमी क्षेत्रों में फैल गया। इस प्रकार मंडली न केवल जन संरक्षण अपितु भव्य राज सम्मान पाने में भी सफल हो गयी। इसलिए बड़ौदा के तत्कालीन महाराजा सयाजी राव गायकवाड़, जो कि कला के असीम पुजारी एवं संरक्षक थे, मंडली को संरक्षण प्रदान करने के लिए आगे आये। जब कभी भी महाराजा मंडली को अपने राज्य में बुलाकर अपने सामने नाटक प्रस्तुत करने के लिए कहते थे तो 5000 रुपये की वार्षिक अनुदान राशि दिया करते थे।

बहुत से पुराने सदस्य, जो अभी भी किर्लोस्कर मंडली में सेवारत थे, अपनी नौकरी छोड़कर गंधर्व मंडली में आ गये। उनमें से दत्तोपंत पेटकर थे जो नायक की भूमिका किया करते थे, तालवाद्य विशेषज्ञ दादा लाड थे, तथा राजाराम बापू पुरोहित थे जो कि हारमोनियम बजाने में सिद्धहस्त थे। इसके साथ साथ युवा पीढ़ी भी मंडली के सदस्यों में प्रवेश करने लगी जिनमें जगन्नाथबुवा पंढारपुरकर का नाम भी था जो भास्करबुवा बाखले का शिष्य तथा एक उत्कृष्ट श्रेणी का शास्त्रीय संगीत गायक था। प्रवर्तक रंगमंच अभिनय का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से गोआ और कोल्हापुर जैसे स्थानों से युवा प्रतिभाओं को ढूंढ कर लाने में भी सफल हुए। उन युवा कलाकारों में कोल्हापुर से शांताराम वानकुडरे भी थे, जिन्होंने बाद में हिंदी फिल्म जगत में वी० शांताराम के नाम से विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की।

मंडली प्रारंभ होने के शीघ्र बाद ही उसकी एक बहुमूल्य उपलब्धि थी प्रतिष्ठित जी बी देवल, जो कि स्मरण होगा कभी अन्नासाहेब किर्लोस्कर के साथ केवल एक साझेदार ही नहीं अपितु नाटककार एवं रंगमंच अभिनय प्रशिक्षक के रूप में भी रहे थे। और वे देवल

ही थे जिन्होंने अपना नाटक "फाल्गुनराव" गंधर्व मंडली को अर्पित किया। वह मूलतः गद्य नाटक था जो अन्य समकालीन नाटक मंडलियों द्वारा खेला गया था। गंधर्व मंडली की आवश्यकतानुसार उन्होंने "फाल्गुनराव" में गीत भी जोड़ दिये थे और इसका नाम बदलकर "संशय - कल्लोल" कर दिया था जो कि एक हास्य नाटिका थी। यह लोकप्रिय नाटक "कामेडी आफ एरर्स" का रूपांतर था तथा अपने गद्य रूप में भी इसने प्रारंभिक वर्षों में आश्चर्यजनक लोकप्रियता प्राप्त की थी। मंडली को भेंट किया गया एक अन्य संगीत नाटक "मृच्छकटिका" भी देवल द्वारा इसी नाम से संस्कृत के उत्कृष्ट नाटक का रूपांतर था।

इस प्रकार गंधर्व मंडली ने व्यावसायिक जीवन का आरंभ कोल्हटकर के "मूकनायक" से किया तथा उसके पश्चात् खादिलकर के "मान-अपमान" और "विद्याहरण" जैसे संगीत नाटक और देवल के "संशय -कल्लोल" एवं "मृच्छकटिका" दिखाये गये। जहां कहीं भी ये नाटक खेले गये उसकी सहज प्रतिक्रिया यह हुई कि मंडली का उद्देश्य किर्लोस्कर की परंपरा को आगे बढ़ाना है। अब तक मंडली ने अपना कार्य क्षेत्र दूर - दराज संस्कृति के गढ़ों जैसे बड़ौदा, इंदौर, औरंगाबाद, पुणे, जलगांव, नागपुर, अमरावती और यवतमल तक बढ़ा लिया था। इन लंबी यात्राओं के दौरान मंडली के प्रमुख व्यक्तियों ने बहुत से समकालीन गायक - अभिनेताओं से संपर्क किया जैसे ललित कलादर्श मंडली के केशवराव भोसले जो अपनी कला-मर्मज्ञता के कारण बाल गंधर्व के लगभग प्रतिद्वंद्वी दिखाई देते थे। **1921** में इस नाटक मंडली में "मान - अपमान" नाटक में भोसले ने नायक के रूप में "धैर्यधर" की तथा बाल गंधर्व ने "भामिनी" के रूप में नायिका की भूमिका निभायी। इसमें बाल गंधर्व को अधिक लोकप्रियता मिली।

यद्यपि गंधर्व मंडली का प्रारंभ सर्वश्रेष्ट था, फिर भी यह देखने में आया कि खादिलकर और पंडित साझेदारी के पक्ष में बिल्कुल नहीं थे। उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि मंडली एकमात्र बाल गंधर्व के अधिकार में होनी चाहिए, जबकि वे स्वयं उनके इस प्रस्ताव के विरुद्ध थे क्योंकि इस मंडली में उन्हें अद्वितीय उपलब्धि के रूप में जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उससे वे पूर्णतया संतुष्ट थे। किन्तु खादिलकर और पंडित के सोचने का ढंग दूसरा ही था।

पंडित जो गंधर्व मंडली में आकर मैनेजर बना, एक प्रभावशाली व्यक्ति था। इसके अतिरिक्त, उसके पिता बाबासाहेब की प्रतिष्ठा के कारण ही मंडली अपने प्रारंभिक कार्यकाल में 7000 रुपये का ऋण प्राप्त करने में सफल हो सकी थी। दूसरे शब्दों में, मंडली के प्रवर्तक उसके आभारी थे और उसे कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी हुई थी।

पंडित की उच्चाकांक्षा बाल गंधर्व को रंगमंच की अधिक से अधिक ऊंचाइयों पर देखने की थी। उसकी हार्दिक अभिलाषा यह थी कि मंडली के आर्थिक साधनों को मजबूत किया जाय, किंतु इस तरह से कि उसका व्यवसाय से कोई संबंध न हो। इससे भी बुरी बात यह थी कि वह स्वयं अपव्ययी था और आर्थिक प्रबंध के मामलों में अनभिज्ञ था। यह एक ऐसा अवगुण था जो बाल गंधर्व की भांति उसमें भी था। बाल गंधर्व की भांति वेशभूषा, रंगमंच सज्जा तथा नाटक प्रस्तुत करने के अन्य पहलुओं के बारे में उसकी भी आडंबरपूर्ण

योजनायें थीं, चाहे उदीयमान मंडली की आर्थिक स्थिति उसके लिए अनुमति देती थी या नहीं।

इसी बीच, पंडित ने यह भी सोचा कि बोदास और तेम्बे की साझेदारी उसकी योजनाओं एवं विचारों के लिए हानिकारक सिद्ध होगी, क्योंकि दोनों साझेदार खर्च के मामलों में अपने पूर्ण अनुशासन और सतर्क देख-रेख के लिए प्रसिद्ध थे। उसने शीघ्र ही ऐसे तरीके अपनाने आरंभ कर दिए जिससे तीनों साझेदारों में मतभेद तथा संदेह उत्पन्न हो जाय। बाल गंधर्व का सहारा लेकर वह अंधाधुंध अशोभनीय तथा व्याकुल करने वाली परिस्थितियां उत्पन्न करता चला गया जिन्हें तेम्बे और बोदास के लिए सहन करना, अनदेखा करना या उपेक्षा करना कठिन था।

दो प्रवर्तकों में से तेम्बे पहले थे जिन्होंने साझेदारी समाप्त कर दी और एकदम दुखी मन से मंडली छोड़ दी। उन पर आरोप लगाया गया था कि उन्होंने बाल गंधर्व द्वारा रंगमंच उपकरणों पर किये गए अपव्यय के औचित्य के बारे में पूछा था। पुराने जानकार व्यक्तियों के अनुसार, इन झूठी अफवाहों का कपट - जाल जान बूझकर पंडित ने तेम्बे को कलंकित करने के लिए बुना था जोकि उसकी विशाल योजना का एक भाग था ताकि एक एक करके दोनों साझेदारों को हटाया जा सके। ऐसा देखा गया है कि तेम्बे एक के बाद दूसरी गलती करता चला गया। इस प्रकार की परिस्थिति मंडली के लिए अच्छा शकुन नहीं थी।

यहां यह भी कहना उपयुक्त है कि जिस प्रकार बाल गंधर्व ने उपकरणों और वेशभूषा में वास्तविकता लाने के लिए धन खर्च किया अब पूरे का पूरा किवदंतियों में सन्निहित है। हजारों रुपये (पचास वर्ष पूर्व की कीमतों के अनुसार) मूल्यवान वस्त्र, साड़ियां और इत्र खरीदने पर खर्च किये गये—इत्र इसलिए कि जैसे ही प्रत्येक नारी पात्र रंगमंच पर पांव रखे दर्शक सम्मोहित हो जायें। राजाओं ने चांदी के मुकुट पहने जिन पर सोने का मुलम्मा चढ़ा होता था। ये भारी मुकुट-अभिनेता की सहनशीलता की परीक्षा होते थे, जब बाल गंधर्व सब कुछ भूलकर, लगातार गाते चले जाते थे मानों वे गीत दुहराने की सशक्त मांग को पूरा कर रहे हों।



9

और अधिक ऊंचाइयों की ओर

यद्यपि गोबिंदराव तेम्बे ने प्रदर्शन करना छोड़ दिया था तथा पेटकर, जो गंधर्व मंडली के गायक - अभिनेताओं में से एक था, को नायक की भूमिका करने का कार्य सौंपा गया, फिर भी 1919 के अंत तक ऐसा नहीं हुआ कि अन्य साझेदार गणपतराव बोदास ने साझेदारी छोड़ दी हो और बाल गंधर्व मंडली का एकमात्र स्वामी बन गया हो। यहां तक यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तेम्बे को निकाल देने से ही बालासाहेब पंडित का षडयंत्र सफल नहीं हो सका था। तेम्बे और बोदास को निकालने के समय के बीच बहुत से महत्वपूर्ण विकास हुए जिनके साथ गंधर्व मंडली के भविष्य के लिए कुछ विरोधाभासी लक्षण भी प्रकट हुए। एक ओर, इसका दिवाला निकलता दिखाई दे रहा था, क्योंकि इसके दोनों वित्तदाताओं के मूर्खतापूर्ण कुप्रबंध के कारण तथा प्रबंधक की सहायता और उकसाने पर बाल गंधर्व बहुत अधिक फिजूलखर्च कर रहा था। दूसरी ओर, नये संगीत नाटकों, जिनके पात्र एवं विषय - वस्तु पौराणिक से बदलकर सामाजिक कर दिए गये थे, को पाकर तथा प्रस्तुत करके गंधर्व मंडली के मंच का रंगपटल न केवल समृद्ध हो गया था अपितु बाल गंधर्व को भी अपनी अभिनय एवं संगीत प्रतिभा दिखाने के अनेक सुअवसर प्राप्त हुए।

यहां धीरे-धीरे बढ़ने वाले आर्थिक संकट की चर्चा करना उपयुक्त होगा। गंधर्व मंडली में आने से पहले बालासाहेब पंडित एक बैंक में कुछ काम करता था जहां वह एक दंडनीय अपराध के मामले में फंस गया था। पुलिस अधिकारियों ने उसके विरुद्ध गंभीर हेराफेरी करने की रिपोर्ट दर्ज करवायी, और जब उसने मंडली में अपना कार्यभार संभाला तो मामले की सुनवाई पहले ही प्रारंभ हो चुकी थी। उसने अपने काम के लिए अपने बचाव के वकील को देने के लिए मंडली के पैसे में से भारी धनराशि निकलवानी प्रारंभ कर दी जो एक लंबे समय तक चलने वाला कानूनी मामला था।

बाल गंधर्व का अपने भव्य पूर्णतावादी विचारों से मनोग्रस्त होना भी मंडली के आर्थिक साधनों पर बोझ का एक और कारण बना। उनका निरंतर लक्ष्य संगीत रंगमंच का "चर्रमोत्कर्ष" था, धन का उनके लिए कोई महत्व न था। उनका आदर्श वाक्य था "सर्वश्रेष्ट

के अतिरिक्त कुछ नहीं"। इस प्रक्रिया में उन्होंने मंडली के लिए जो कुछ भी किया उसमें भव्यता एवं वैभव, तथा मनोहरता और वास्तविक लाने का प्रयास किया। उदाहरणतया, वेशभूषा रेशम की बनवायी गयी। उन्होंने वेशभूषा तथा अन्य संबंधित उपकरणों को समयानुकूल बनाने पर बल दिया। जरी के वस्त्र वाराणसी (उस समय बनारस कहलाता था) से आदेश देकर बनवाए गये, जबकि सोने का मुलम्मा चढ़े चांदी के आभूषण बनवाए तथा जेवरों में जुड़ने के लिए अल्पमूल्य पत्थरों का प्रयोग किया गया। किसी सीमा तक उन्होंने पुरोगामी पौराणिक नाटकों के प्रदर्शन की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी— जैसे "सुभद्रा", "स्वयंवर", "कीचक-वध" और "द्रौपदी"। उन्होंने अपने "द्रौपदी" नाटक के एक दृश्य में कौरवों और पांडवों का दरबार दिखाने के लिए सजावट एवं दृश्य पर 75000 रु. खर्च किए।

उस समय इन पौराणिक नाटकों ने बाल गंधर्व और उनकी मंडली को सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा दिया, इसके साथ ही इतिहास प्रसिद्ध सामाजिक नाटक "मान-अपमान", "एकच-प्याला", "संशय कल्लोल" तथा "शारदा" नाटक भी अधिक पीछे न रहे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है देवल द्वारा लिखित "संशय - कल्लोल" एक उल्लसित हास्य - नाटक था। उसी लेखक के "शारदा" नाटक में बाल-विवाह से होने वाले विनाश का वर्णन था जिसका उन दिनों प्रचलन था। "एकच - प्याला" बहुमुखी प्रतिभासंपन्न लेखक, कवि और नाटककार रामगणेश गडकरी द्वारा लिखा गया था जिनकी जीवनलीला 36 वर्ष की आयु में असमय मृत्यु के कारण समाप्त हो गयी थी। यह सामाजिक नाटक शराब की बुराइयों को प्रदर्शित करता था। यह नाटक 1919 में नाटककार की असमय मृत्यु के चार सप्ताह बाद खेला गया था। सिंधु के रूप में बाल गंधर्व की भूमिका उनकी कला की एक उत्कृष्ट उपलब्धि मानी गयी है। एक वकील, जो शराब का आदी हो जाता है, उस की पतिव्रता पत्नी का अभिनय करते हुए बाल गंधर्व साधारण साड़ी पहनकर आये— उस साटन और जरी के विपरीत जो वे खादिलकर के संगीत नाटकों में पहना करते थे। वे दुखद क्षणों में उतने ही भावुक थे जितना उल्लसित अपने गीतों में होते थे। संक्षेप में, ये सब नाटक न केवल आर्थिक दृष्टि से सफल सिद्ध हुए अपितु इनसे बाल गंधर्व और उनके साथियों में नये हर्षोल्लास का संचार भी हुआ।

वस्तुतः, बाल गंधर्व का करिश्मा रंगमंच - प्रेमी रसिकों के लिए इतना अधिक सम्मोहक हो गया था कि लोग उनके नाटक देखने के लिए दूर - दूर से आते थे, चाहे वे कहीं भी खेले जाते हों। तार द्वारा सीटों का आरक्षण होता था तथा नाटकों के संसार में उन दिनों दर्शकों को ले जाने के लिए विशेष बसें चलायी जाती थी। नाटककार का अभिनय देखने और गाना सुनने के लिए उनमें से बहुत से दर्शक 100 रुपये प्रति टिकट की दर से खर्च करने में भी नहीं झिझकते थे।

ऐसे बहुत से अवसर आते थे जब बाल गंधर्व की आवाज प्रायः नियंत्रण से बाहर हो जाती थी क्योंकि उन्हें बचपन से बर्फ का ठंडा पानी पीने की आदत थी। किंतु उनके प्रेमी दर्शकों के लिए ऐसी घटनाओं का कोई विशेष अर्थ न था। वे प्रायः निराश होकर घर लौटते थे किंतु अगले प्रदर्शन में फिर उतना ही विशाल जन समूह होता था और जब वे उन्हें अद्वितीय गायक के रूप में देखते तो पिछला सब कुछ भूल जाते और प्रसन्नचित होकर मार्ग में उनके गीत गुनगुनाते हुए घर वापिस लौटते थे।

अन्य अभिनेताओं की भूमिका बदल देने से भी उन्हें कोई अंतर नहीं पड़ता था। अनेक अवसरों पर नायक की भूमिका करने वाले अभिनेता के स्थान पर दूसरा अभिनेता बदला गया, उदाहरणतया, तेम्बे के चले जाने से या जोगलेकर और पेटकर जैसे नाट्यकारों की अकस्मात मृत्यु हो जाने के कारण बोदास जैसे नाट्यकला - प्रशिक्षक अथवा खादिलकर और देवल जैसे नाटककार प्रशिक्षक नायकों के रिक्त स्थानों को भरने के लिए नये अभिनेताओं को परिश्रमपूर्वक प्रशिक्षण दे रहे थे ताकि नायक की भूमिका में पूर्णता तथा विशिष्टता लायी जा सके जो नायिका के रूप में बाल गंधर्व की भूमिका की बराबरी कर सके।

इसी अवधि में बोदास ने अपनी असाधारण रंगमंच अभिनय प्रतिभा का परिचय भी दिया। उसने विविध भूमिकाओं में उत्कृष्ट कलाकौशल दिखाया - इनमें अधिकतर नायक की भूमिकाएं थी। उसे बाल गंधर्व और पंडित दोनों से ही समान रूप से गहन श्रद्धा एवं प्रशंसा प्राप्त हुई।

किंतु बोदास की अनुशासनप्रियता की भावना तथा मंडली के आर्थिक मामलों में कड़ी निगरानी पंडित को अपने चिरसंचित लक्ष्य की ओर बढ़ने में निरंतर अवरोध उत्पन्न कर रही थी। मंडली के घरेलू मामलों में ऐसे बहुत से प्रसंग एवं वृतांत आये थे जब स्वयं बाल गंधर्व को बोदास द्वारा अनियंत्रित खर्च को नियंत्रित करने के लिए किए गये कुछ उपायों से क्रोधित होना पड़ता था। ऐसी घटनाओं से दोनों साझेदारों में धीरे धीरे मनमुटाव बढ़ता गया। साथ में पंडित ने सदैव आग में घी डालने का कार्य किया। और 24 नवम्बर 1919 को अंततः बोदास ने मंडली से अपनी साझेदारी समाप्त करने का निर्णय कर लिया। वह अपनी साझेदारी समाप्त करने के बदले में बाल गंधर्व से 27000 रुपये की नकद धनराशि लेने के लिए सहमत हो गया। इस प्रकार बाल गंधर्व आगामी मास से गंधर्व मंडली के एकमात्र स्वामी बन गये।

10



व्यथा और उल्लास

बाल गंधर्व द्वारा गंधर्व मंडली का एकमात्र स्वामित्व ग्रहण कर लेने के बाद हुए विकास का और अधिक स्पष्ट मूल्यांकन करने के लिए यह आवश्यक है कि समकालीन संगीत नाट्यशालाओं के दृश्य की एक झलक देख ली जाय।

1913 में किर्लोस्कर मंडली का विघटन हो जाने के बाद भी वह अपने क्षेत्र में कार्य करती रही किंतु द्वितीय श्रेणी की बनकर। फिर 1918 में एक और विभाजन हुआ जिसके दौरान चिंतामनराव कोल्हटकर तथा दीनानाथ मंगेशकर (सुप्रसिद्ध गायिका लता मंगेशकर के पिता) ने बलवंत संगीत मंडली के नाम से अपनी अलग मंडली बनाने के लिए किर्लोस्कर मंडली छोड़ दी। कोल्हटकर एक उत्कृष्ट चरित्र अभिनेता थे, जबकि नयी मंडली में दीनानाथ एकमात्र गायक-अभिनेता थे। उन्होंने मनमोहक स्त्री भूमिकाएं निभायीं। दोनों नाट्य कलाकार समकालीन नये नाटकों की शृंखला जैसे राम गणेश गडकरी का समसामयिक रोमांटिक नाटक "भव-बंधन" तथा वामनराव जोशी का दृष्टांत नाटक "रण-दुंदुभि", प्रदर्शित करके मंडली को ठोस आधार प्रदान करने में सफल हो सके थे। उन्होंने हिंदुस्तानी संगीत के अनुभवी संगीतज्ञ रामकृष्णाबुवा वाजे को गीतों के लिए संगीत प्रदान करने के लिए रख लिया।

संगीत रंगमंच पर एक और मंडली प्रकट हुई "शिवराज संगीत मंडली" जिसकी स्थापना 1915 में गोबिंदराव तेम्बे ने गंधर्व मंडली छोड़ने के बाद की थी।

तेम्बे, जिन्होंने बाल गंधर्व के "मान-अपमान" के लिए संगीत संयोजन करके अपार ख्याति अर्जित की थी, ने अब्दुल करीम खान के शिष्य शंकर राव सरनायक को, जो किराना घराने के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे, मंडली में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया और उसे नारी गीतों की भूमिका के लिए प्रशिक्षित किया। 1919 में सरनायक ने यशवंत संगीत मंडली में सम्मिलित होने के लिए तेम्बे की मंडली छोड़ दी, जो उस समय इंदौर के महाराज सवाई यशवंतराव होल्कर के संरक्षण में थी। सरनायक, जो बाद में मंडली का स्वामी बन गया, अभिनेता की अपेक्षा गायक अधिक था और उसके मधुर गीत ही थे जिनके कारण उसकी

मंडली को सतत लोकप्रियता प्राप्त हुयी।

उस समय संगीत नाटकों का प्रदर्शन करने वाली एक और नाटक मंडली "नाट्यकला प्रसारक मंडली" भी थी, जिसमें मास्टर कृष्णराव संगीताचार्य भास्करबुवा बाखले के मार्गदर्शन में गायक-अभिनेता का प्रशिक्षण ले रहे थे। यह दोनों के गंधर्व मंडली में सम्मिलित होने से पहले की बात है।

केशवराव भोसले एक महान प्रतिष्ठित गायक-अभिनेता थे। उन्होंने पहले "स्वदेश हित - चिंतक नाटक मंडली" में, जो प्रतिस्पर्धा में कभी किर्लोस्कर मंडली के निकट मानी जाती थी, गायक-अभिनेता के रूप में कार्य किया था। 1907में भोसले ने "ललित कलादर्श नाटक मंडली " के नाम से अपनी मंडली बनाने के लिए किर्लोस्कर मंडली छोड़ दी।

"मान-अपमान" रंगमंच पर उनके सर्वाधिक सफल नाटकों में से एक था। इसके अतिरिक्त बी वी. उर्फ मामा वारेरकर द्वारा लिखित अनेक समकालीन सामाजिक नाटक भी सफल हुए थे। उन्होंने अपनी मंडली के लिए संगीत निर्माता रामकृष्णाबुवा वाजे की सेवायें भी प्राप्त की थीं।

भोसले के नेतृत्व में "ललित कलादर्श मंडली" के परदे पर उभरने को कई लोगों ने गंधर्व मंडली के लिए एक गंभीर चुनौती मान लिया था। तथा यह औचित्य के बिना नहीं था। पहला कारण, भोसले की मंडली का उद्देश्य समकालीन विषयों पर नाटक खेलकर रंगमंच को लोकप्रिय बनाना था जो कि तब तक गंधर्व मंडली के पारंपरिक और पौराणिक कथाओं को प्रस्तुत करने के मुख्य आधार के विपरीत था। दूसरे, उस समय स्वयं भोसले की लोकप्रियता भी ध्यान में रखना एक कारण बनी थी। जानकार सूत्रों के अनुसार, बाल गंधर्व ने भोसले की चुनौती के फलस्वरूप एक इतिहास-प्रसिद्ध संयुक्त प्रदर्शन किया जिसका नाम था "संयुक्त मान - अपमान"।

"संयुक्त मान - अपमान" के प्रदर्शन का उद्देश्य 1921 में लोकमान्य तिलक, जिनका एक वर्ष पूर्व ही स्वर्गवास हुआ था, की स्मृति में महात्मा गांधी द्वारा प्रारंभ किये गये राष्ट्रीय कोष के लिए धन एकत्र करना था। वे स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किये जा रहे संघर्ष के अशांत दिन थे, और राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत दोनों नाटककार संयुक्त प्रदर्शन के लिए सामूहिक रंगमंच पर आ गये। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस प्रकार का प्रदर्शन करने का विचार बाल गंधर्व ने ही प्रस्तुत किया था, और वही इस मामले में पहल करते हुए व्यक्तिगत रूप से आकर भोसले से मिले थे जिसने स्वेच्छापूर्वक उनके साथ मिलकर प्रदर्शन करने की अपनी सहमति दे दी थी। प्रसंगवश इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उन दोनों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी, कम से कम दूषित प्रतिस्पर्धा तो नहीं थी।

उस समय बाल गंधर्व ने स्वयं नायिका भामिनी का अभिनय किया जबकि नायक धैर्यधर की भूमिका भोसले ने निभायी। जैसा कि पूर्वानुमान था, संयुक्त प्रदर्शन को रंगमंच प्रेमियों की ओर से अभूतपूर्व सराहना प्राप्त हुई। प्रदर्शन में एकत्र होने वाली कुल धनराशि 16000 रुपये थी जो उन दिनो नाटक के एक प्रदर्शन के लिए कभी सुनने में नहीं आयी

थी। सार्वजनिक मांग को पूरा करने के लिए उसका पुनः प्रदर्शन किया गया जिसको उतनी ही आश्चर्यजनक प्रशंसा प्राप्त हुई।

निस्संदेह यह प्रदर्शन बाल गंधर्व और भोसले की व्यक्तिगत योग्यता तथा प्रतिभा के लिए असीमित उपलब्धि था। फिर भी इस बारे में अलग-अलग विचार थे कि किसका अभिनय अधिक अच्छा था। दुर्भाग्यवश इस प्रदर्शन के कुछ सप्ताह के अंदर ही भोसले का 31 वर्ष की आयु में अचानक देहांत हो गया। उसकी मृत्यु न केवल उसकी मंडली के लिए अपितु मराठी संगीत नाटक जगत के लिए भी कभी न पूरी हो सकने वाली हानि थी। कौन जानता है कि यदि भोसले दीर्घकाल तक जीवित रहता तो इस परंपरा का इतिहास शायद कुछ और ही होता। यह वास्तविकता है कि भोसले की मृत्यु के बाद अपने क्षेत्र में बाल गंधर्व का कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं रहा।

इस बीच गंधर्व को अनेक प्रकार से विजय के साथ त्रासदी तथा उल्लास के साथ व्यथा का सामना करना पड़ा। एक तो इस तरह कि बाल गंधर्व और उनके प्रबंधक बालासाहेब पंडित दोनों निरंतर फिजूलखर्च करने में लगे रहे। वेशभूषा, रंगमंच सज्जा और जेवरों पर खर्च करने के साथ - साथ, बाल गंधर्व ने संगीत जगत के अनेक दैदीप्यमान मार्गदर्शकों को आकर्षक धनराशि देकर उनकी सेवायें वाद्ययंत्रों का पुनर्गठन करने के लिए प्राप्त कर लीं। इस दल में सुप्रसिद्ध "तबला" वादक अहमद खान थिरकवा थे, कादर बक्ष थे जो कि उतने ही प्रसिद्ध "सारंगी" उस्ताद थे, तथा यशस्वी "आर्गन" प्रवीण विष्णुपंत कांबले थे। अपनी मंडली में कांबले के आने से बाल गंधर्व ने हारमोनियम के स्थान पर "आर्गन" मंगवाया। वह बहुत महंगा वाद्ययंत्र था जो कि विदेश से लाया गया था। परिणामतया गंधर्व मंडली का ऋण भी उसकी प्रसिद्धि और लोकप्रियता के समान बढ़ता गया।

पंडित का नियंत्रण बाल गंधर्व पर इस सीमा तक था कि उस प्रतिष्ठित संगठन के कर्मचारी आर्थिक मामलों में अपने स्वामी को सूचित करने की कभी परवाह नहीं करते थे और जहां तक बाल गंधर्व की बात है वे अपने ढंग के निराले ही थे। वे अपने प्रबंधक को अपने अंतःकरण का रक्षक मानते थे। उसका मंडली में इतना अधिक प्रभाव था कि उसने अपने स्वामी का उनके संबंधियों से भी मिलना प्रायः दुर्लभ कर दिया था, उनके अपने नाटककार मित्रों से मिलने की तो बात ही न पूछिए। प्रत्येक उस व्यक्ति को जो स्वामी से मिलना चाहता था प्रबंधक से पूर्व अनुमति लेनी अनिवार्य थी। कोई भी विशेष संगीत-गोष्ठी पंडित की सहमति के बिना नहीं हो सकती थी। वस्तुतः, बाल गंधर्व को पंडित पर इस सीमा तक विश्वास एवं भरोसा था कि वे उसके ठीक और गलत कार्यों से बिल्कुल अनभिज्ञ हो गये थे।

गंधर्व मंडली पहले ही, संयुक्त "मान-अपमान" के प्रदर्शन से भी बहुत पहले, कर्ज में गहराई तक डूब चुकी थी। इसका लिखित प्रमाण उपलब्ध है कि ऋण की राशि का कुल योग 1.65 लाख रुपये हो गया था, जिसमें से 65000 रुपये पंडित ने अपनी व्यक्तिगत

देयताओं पर खर्च किये थे। अकेले "द्रौपदी" नाटक के भव्य प्रदर्शन पर 72000/- रुपये की विपुल धनराशि खर्च की गयी जबकि शेष 27000 रुपये गणपतराव बोदास को गंधर्व मंडली से साझेदारी समाप्त करने की क्षतिपूर्ति राशि के रूप में दिए गये थे। और चाहे विश्वास कीजिए या न कीजिए, बाल गंधर्व स्वयं इन सब बातों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे।

बोदास के चले जाने से मंडली के रंगमंच प्रदर्शन के स्तर में बहुत गिरावट आयी। अपनी तरह के उत्कृष्ट नाटककार होने के साथ उन्होंने अधिकतर नाटकों में नायक की भूमिका की थी। बोदास रंगमंच अभिनय के उत्कृष्ट शिक्षक थे जो अभिनेताओं को नियमित अभ्यास करवाकर सक्रिय रखते थे। वे बुद्धिमान कार्यकुशल व्यक्ति थे। पंडित ने सफलतापूर्वक दो वर्ष बाद बोदास को मंडली में वापिस आने के लिए मनाया यद्यपि एक साझेदार के रूप में नहीं अपितु मंडली के एक सदस्य की भांति। बोदास जानते थे कि मंडली कितने अधिक संकट में फंसी हुई थी। वे यह भी जानते थे कि उनके वापिस आने पर मंडली के मामलों में उनका कोई महत्व नहीं होगा, इसलिए उन्होंने घटनाओं के प्रति मूक दर्शक बने रहना ही उचित समझा।

संकट की घड़ी उस समय आई जब मंडली के लेनदारों से बाल गंधर्व को कानूनी नोटिस का सामना करना पड़ा जिसमें धमकी दी गई थी कि यदि उनकी धनराशि लौटाई न गयी तो वे उस अव्यवस्थित मंडली को अपने अधिकार में ले लेंगे। मंडली की वार्षिक छुट्टियां चल रही थी और पंडित तीर्थयात्रा पर निकला हुआ था।

इस नोटिस का समाचार शीघ्र ही दूर-दूर तक फैल गया जिससे नाटक जगत में हलचल मच गई। नाटककार को इस संकट से उबारने के लिए समाज के धनी वर्ग से उदारतापूर्वक विपुल धनराशि सहायतार्थ देने के प्रस्ताव आने लगे। जिन शुभचिंतकों ने प्रस्ताव भेजे उनमें जमनादास मेहता जैसे नेतागण, विट्ठल सयन्ना और बालचंद हीरा चंद जैसे यशस्वी वकील, कांग्रेस नेता और उद्योगपति तथा डा० आर० एच० भद्रकामकर जैसे डाक्टर थे। वे सब नाटककार के अनन्य भक्त थे। बाल गंधर्व ने विनम्रतापूर्वक ऐसे सब प्रस्तावों को ठुकरा दिया। न ही उन्होंने अपने प्रशंसकों के उनके लिए धन एकत्र करने के प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने उनसे कहा, "कृपया मेरे लिए धन एकत्र करने के बारे में मत सोचिए। यह ऋण मैंने चढ़ाया है क्योंकि मेरी अपनी गलती थी। मुझे यह ऋण अपने पास से स्वयं लौटाने दीजिए। परीक्षा की इस घड़ी में मुझे बस ईश्वर की कृपा और आपकी शुभकामनाएं चाहिएं"।

मित्रों तथा शुभचिंतकों के बहुत विचार-विमर्श एवं वाद-विवाद करने के बाद, बंबई के प्रतिष्ठित न्यायाभिकर्ता पी०एस०लाड, जिनका संपर्क गंधर्व मंडली से उसकी सलाहकार समिति के प्रमुख सदस्य के रूप में था, ने मंडली का ऋण उतारने की जिम्मेवारी स्वेच्छापूर्वक संभाल ली। उन्होंने बाल गंधर्व से सहमति लेकर मंडली का पूरा कार्यभार संभाल लिया और अपने आपको उस दूभर कार्य में लगा दिया। कार्य संचालन बंधक के रूप में था। लाड ने अपनी व्यवस्था में जो विशेष उपाय किये उनमें से एक था बालासाहेब पंडित को

निकालकर उसके स्थान पर अपने एक विश्वसनीय एवं अनुभवी व्यक्ति, दादा कटडरे, को प्रबंधक नियुक्त करना, जिसे मंडली को ठीक तरह से व्यवस्थित करने का कार्य सौंपा गया।

लाड परिवार अपने कला एवं संस्कृति प्रेम के लिए प्रसिद्ध था। उनमें बाल गंधर्व के प्रति असीम सदभावना तथा श्रद्धा थी और उन्हें वे अपना ही समझते थे। वस्तुतः नाटककार और लाड परिवार के बीच बंधुता की भावना इतनी सुदृढ़ थी कि गंधर्व मंडली का कोई भी रंगमंच प्रदर्शन लाड और उसके संबंधियों की उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं होता था। विट्ठबाई, लाड की प्रतिभाशाली पुत्री, जो बाद में फिल्म जगत में आधिपत्य जमाने के लिए दुर्गा खोटे के नाम से आयी, ने अपने भावी व्यवसाय की प्रेरणा बाल गंधर्व की प्रतिभा से पायी थी।

इस अवधि में बाल गंधर्व के जीवन और व्यवसाय को कई प्रकार की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का सामना करना पड़ा। उनके पिता की मृत्यु के तुरंत बाद **1918** में, बाल गंधर्व के दो बच्चों का निधन हो गया, जबकि दोनों पुत्र अभी शिशु ही थे। उसके बाद अनुभवी देवल गुजर गये और गडकरी भी जिनके सामाजिक नाटक "एकच प्याला" ने बाद के वर्षों में रंगमंच जगत के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाया। दुर्भाग्य की विडंबना थी कि गडकरी अपने नाटक का उद्घाटन प्रदर्शन भी न देख सके, क्योंकि कुछ सप्ताह पूर्व ही निर्मम मृत्यु ने उन्हें **36** वर्ष की जवान आयु में छीन लिया।



11

अधोगामी यात्रा

गंधर्व मंडली की छुट्टियों की अवधि में तीर्थ यात्रा पर निकलने से पहले, बालासाहेब पंडित गणपतराव बोदास को मनाकर अपनी मंडली में वापिस लाने में सफल हो गया था। किंतु यह वापसी थोड़े समय के लिए ही हो सकी क्योंकि मंडली में दुबारा सम्मिलित होने के एक वर्ष के भीतर ही बोदास बवासीर से बहुत अधिक पीड़ित हो गये और उन्हें लंबा इलाज करवाने के लिए अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी।

घटनाओं के इस अज्ञात मोड़ ने कर्ज के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई मंडली की समस्याओं में एक और वृद्धि कर दी। बाल गंधर्व आशापूर्वक बोदास से दीर्घ काल तक साहचर्य बनाये रखने की उम्मीद लगाये बैटे थे,क्योंकि वे सोचते थे कि मंडली के व्यावसायिक कार्य को चलाने के लिए उनका रहना अनिवार्य था।

विपत्तियों में एक और विपत्ति की वृद्धि हुई। गडकरी के गुजर जाने के शीघ्र बाद ही भास्कर बुवा बाखले की अचानक मृत्यु से मंडली को एक और आघात पहुंचा। बाल गंधर्व बाखले का आदर और सम्मान करते थे तथा उन्हें संगीत नाटकों के अपने गुरुओं में से एक मानते थे जिन्होंने उनके लिए धन की वर्षा करने वाले संगीत नाटकों के गीतों के लिए हिंदुस्तानी संगीत पर आधारित उत्कृष्ट तथा विविध धुनों का निर्माण किया था। इन सब दुखद घटनाओं के संयुक्त प्रभाव से नाटककार पर बोझ एवं तनाव इतना बढ़ गया कि उनकी सेहत खराब रहनी प्रारंभ हो गयी।

पी० एस० लाड, जिनका अब मंडली के मामलों पर नियंत्रण था बाल गंधर्व के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर बहुत चिंतित हो उठे। इसलिए, उन्होंने मंडली को विशेष अवकाश देने का निर्णय किया और नाटककार के विश्राम एवं स्वास्थ्यलाभ के लिए उनका नासिक में ठहरने का प्रबंध किया। इस परिवर्तन ने शीघ्र ही बाल गंधर्व को उनकी पहले वाली स्थिति में वापिस ला दिया और मंडली ने अपना सामान्य कामकाज नये उत्साह एवं विश्वास के साथ करना आरंभ कर दिया।

"स्वयंवर", "मान-अपमान", "विद्याहरण" और "सुभद्रा" जैसे सदैव प्रिय संगीत

नाटकों के साथ नयी वृद्धि हुई, गडकरी के "एकच प्याला" की जिसका प्रदर्शन निरंतर साढ़े छः वर्ष तक चलता रहा और रंगमंच प्रेमियों में लगातार हलचल मचाता रहा जबकि मंडली कर्ज में चलती रही । यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि ये नाटक बंबई में तथा अन्य स्थानों पर कितनी बार दिखाये गये। "द्रौपदी" नाटक भी जो प्रारंभ में, मंडली की आर्थिक दशा खराब होने के बारे में जनता की कठोर प्रति क्रिया होने के कारण, जमने में असफल हो गया था, उसी के प्रदर्शन ने कुछ ही समय में अभूतपूर्व धनोपार्जन कर दिखाया। इस अद्भुत सफलता का श्रेय बाल गंधर्व को ही जाता है । वस्तुतः, उन्होंने अपनी सारी शक्ति, योग्यता और प्रतिभा "द्रौपदी" के प्रदर्शन में अपने प्रिय दर्शकों से सम्मान प्राप्त करने के लिए लगा दी थी।

यहां यह याद दिलाया जाता है कि गंधर्व मंडली से साझेदारी छोड़ने के परिणामस्वरूप बोदास के चले जाने से नायक की भूमिका करवाना प्रायः दुसाध्य हो गया था । फिर भी इसका यह अर्थ नहीं था कि इससे मंडली की प्रगति को बहुत क्षति पंहुची थी । उस समय पंढारपुरकर ही था जिससे बाल गंधर्व ने बोदास के स्थान पर अधिकतर नाटकों में नायक का अभिनय करवाया। यद्यपि नया सदस्य अपने आपमें योग्य था, फिर भी कई चरित्र भूमिकाओं को निभाने में उसकी कुछ सीमाएं थी। इसलिए **1922** में बाल गंधर्व ने विनायकराव पटवर्धन को लेने का निर्णय किया जो यशस्वी शास्त्रीय संगीत गायक तथा पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर का सर्वश्रेष्ट शिष्य था। तभी से पटवर्धन मंडली के प्रमुख संगीत नाटकों में नायक का अभिनय करता गया।

बाद में, उसी वर्ष, बाल गंधर्व ने अपने नाटकों के भंडार में एक और नाटक, "वीर तनया" को जोड़ा जिसके लेखक कोल्हटकर थे । इस नाटक में बाल गंधर्व ने पहली बार नायक शूरसेन का अभिनय किया जो स्पष्टतया परिवर्तन के लिए था । यद्यपि यह उनके दर्शकों के विशेष मनोकूल नहीं था फिर भी नाटक के प्रदर्शन से भारी धन प्राप्ति हुई। बाल गंधर्व के प्रेमी नाटककार के प्रति जिज्ञासा एवं प्रशंसा से वशीभूत हो कर आये थे।

नाटक "आशा-निराशा" तथा "नंद-कुमार", दोनों के लेखक वाई०एन० तिपनिस थे, जो गंधर्व मंडली द्वारा बंबई में क्रमशः **1923** और **1925** में खेले गये। दोनों ही नये नाटक थे और अभिनेताओं को उनका अभ्यास करवाने की जिम्मेवारी तिपनिस और बाल गंधर्व ने स्वयं संभाली। दोनों ही नाटकों ने टिकटघर पर अपार सफलता इसलिए प्राप्त की थी क्योंकि उनका उच्चकोटि का संगीत मास्टर कृष्णाराव ने तैयार किया था।

फिर एक अन्य संगीत नाटक "मेनका" भी आया जो खादिलकर द्वारा लिखा गया था और जिसकी कहानी सुप्रसिद्ध महाकाव्य पर आधारित थी । इस प्रकार के प्रदर्शनों पर बाल गंधर्व की फिजूलखर्च की प्रवृति को ध्यान में रखते हुए, अनुभवी लेखक ने मेनका (जिसका अभिनय बाल गंधर्व ने किया) और विश्वामित्र (जिसका अभिनय पटवर्धन ने किया) दोनों प्रमुख भूमिकाओं का प्रदर्शन बहुत ध्यानपूर्वक साधारण, सादे और आडंबरहीन ढंग से किया।

अब तक बाल गंधर्व की आयु 38 वर्ष हो चुकी थी। उनकी आयु ने अब उनके रंगमंच प्रदर्शन में वास्तविकता का सूक्ष्म प्रभाव दिखाना प्रारंभ कर दिया था। यहां तक कि अब उनकी भूमिकाओं में भी परिपक्वता का गुण झलकने लगा था, परंतु गंजेपन और मोटेपन से घबराने के प्रमाण भी मिलते थे जिसके फलस्वरूप यह समस्या खड़ी हो गयी कि उनके गंजेपन को कैसे छिपाया जाय। बाल गंधर्व ने विग पहनने का निर्णय किया जो उन्होंने विशेषतया फ्रांस से ज्यादा दामों पर मंगवाया था और पूर्णतया अपनी आवश्यकतानुसार बनवाया था। किंतु फिर भी न तो उनके नारी अभिनय में और न ही गायक नाट्यकलाकार के गुण में कोई कमी आयी थी। वे निरंतर जनता के बीच बहुत लोकप्रिय भक्ति भाजन बने रहे। बंबई के ग्रांट रोड़ क्षेत्र की नाट्यशालाओं में धनी गुजराती व्यापारी, मुलतानी और खोजा एक दूसरे से उनके प्रदर्शन की टिकटें बुक करने की होड़ लगाया करते थे । अपने व्यावसायिक दौरों के दौरान मंडली जहां कहीं भी जाती उसके प्रति श्रद्धा और लोकप्रियता की वही पुरानी कहानी दोहरायी जाती । और 1927 के अंत तक मंडली अपना कर्ज उतारने में सफल हो गई जो ब्याज सहित कुल 3.90 लाख रुपये का था।

यह आश्चर्यजनक था, किंतु मंडली ने वास्तव में विस्मयकारी कमाई करके जो मानक बनाया उस महान कार्य में कुछ कम सच्चाई नहीं थी। इस बात का लिखित प्रमाण है कि 1921 से 1931 तक मंडली की वार्षिक आय दस वर्षों तक निरंतर बिना किसी व्यवधान के औसतन 1.75 लाख रुपये वार्षिक रही ।

इस बीच, रंगमंच अभिनय का प्रशिक्षण देने की अतिरिक्त जिम्मेवारी ने बाल गंधर्व की आवाज पर हानिकारक प्रभाव डालना आरंभ कर दिया। बोदास को तीसरी बार मंडली में वापिस लाने के अतिरिक्त इसका कोई और उपाय दिखाई नहीं दिया। इस प्रकार 1928 में बोदास के मंडली में वापिस आने से बाल गंधर्व अपनी एक भारी जिम्मेवारी से मुक्त हो गये। मंडली के लिए यह भी एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि बोदास के मार्गदर्शन एवं निर्देशन में मंडली के यशस्वी रंगमंच प्रदर्शन की पुरानी आभा फिर से लौट आयी।

सभी तरह से, 1921 से आगे के दस वर्षों का समय बाल गंधर्व और उनकी मंडली के लिए सर्वाधिक समृद्ध रहा । इस अवधि के अंत तक बहुत से रंगमंच प्रेमियों ने अनुभव किया कि अब समझदारी इसी में है कि नाटककार रंगमंच से सन्यास ले लें । व्यस्क "नट सम्राट" के जीवन में अब कोई ऐसी आर्थिक जिम्मेवारी नहीं थी जिसके लिए उन्हें और संघर्ष करना पड़ता। उनकी स्थिति ऐसी थी कि आराम से जीवन व्यतीत कर सकते थे।

किंतु हाय ! ऐसा नहीं होना था। उनको आघात पंहुचाने के लिए दुर्भाग्य के भंडार में अभी एक और गहरी चोट शेष थी। 1928 में, मृत्यु ने उनके जीवित तीन बच्चों में से, जो सभी पुत्रियां थीं, सबसे बड़े बच्चे को छीन लिया। उसके कान में गंभीर संक्रमण हो गया था जब गंधर्व मंडली बरार के केन्द्रीय प्रांत अमरावती में ठहरी हुई थी । यद्यपि संक्रमण सफल शल्यक्रिया द्वारा ठीक कर दिया गया था, किंतु उसके शीघ्र बाद ही वह मियादी बुखार की शिकार हो गयी।

बाल गंधर्व, जो कि प्रारंभिक वर्षों में एक पुत्री और दो पुत्रों की मृत्यु का दुख धैर्यपूर्वक सहन कर गये थे, उनके लिए यह आघात इतना अधिक था कि सहन नहीं किया जा सकता था। ताई (परिवार में प्यार से उसे इसी नाम से पुकारते थे) की आयु विवाह योग्य हो गयी थी और वह अपने पिता की प्यारी थी। और इससे भी अधिक भाग्य की विडंबना थी कि पुत्री की मृत्यु उसी दिन हुई जिस दिन "मृच्छकटिका" का रंगमंच प्रदर्शन होना था। हम भूल नहीं सकते कि वर्षों पहले "मान-अपमान" के प्रथम प्रदर्शन के अवसर पर भी ऐसा ही हुआ था। महान नाटककार, जो कि अब पूर्णतया टूट चुका था, ने मंडली एवं जनता के बहुत अनुनय-विनय करने के विपरीत "मृच्छकटिका" का प्रदर्शन करने का दृढ़ निश्चय किया था।

नाटककार के इस व्यक्तिगत दुख के कारण उनके नायिका "वसंतसेना" के अभिनय में कोई अंतर नहीं आया था। जिन्होंने नाटक देखा वे उनके गाने और अभिनय में मर्मस्पर्शी भावना को पहचान गये और भाव विह्वल हो गये थे। कहा जाता है कि उनके अभिनय ने सभी देखने वालों को रुला दिया था।

1930 में जब मंडली पुणे में थी, बाल गंधर्व की जीवित दो पुत्रियों में से बड़ी पुत्री सरोजिनी की सगाई चिकित्सा व्यवसाय में रत एक नवयुवक डाक्टर गोबिंदराव वाबले से कर दी गयी। विवाह ऐसी धूमधाम से किया गया जैसा कि एक राजपरिवार के उपयुक्त था। नाटककार के लिए परिवार में खुशी का यह पहला अवसर था, और उस अवसर को भव्य बनाने के लिए धन का उनके लिए कोई महत्व न था।

सात दिन लगातार धूमधाम, चमक-दमक और भव्य प्रदर्शन के साथ समारोह चलता रहा। उस अवसर पर दूर-दूर से आये संबंधियों एवं अतिथियों की भीड़ लग गयी। उन्हें दोपहर तथा रात्रि को राजसी भोजन और बहुमूल्य उपहार दिये गये। आतिथेय में इतना खुलकर खर्च किया गया कि 30000 रुपये की अविश्वसनीय धनराशि खर्च हो गई। ऐसा करने से वे दुबारा ऋण में धंस गये।

सरोजिनी के विवाह के शीघ्र बाद ही बाल गंधर्व पर दुर्भाग्य की एक और चोट पड़ी। पहले वे कई धार्मिक अनुष्टान करवा चुके थे जिसमें एक संपूर्ण यज्ञ भी था जो भगवान को संतुष्ट करने के लिए किया गया था ताकि वह उन्हें एक पुत्र देकर धन्य करे । वास्तव में एक पुत्र हुआ भी किंतु केवल चौबीस घंटे जीवित रहा।

सभी मानसिक तनावों तथा बिगड़ी हुई आर्थिक स्थिति के बावजूद, बाल गंधर्व ने अपने दामाद को चिकित्सा क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैंड भेजने की व्यवस्था कर ली। उनकी योजनाओं के अंतर्गत, नाट्यकलाकार को विश्वास था कि वे बढ़ते हुए ऋण को उसी प्रकार धीरे-धीरे उतार देंगे जैसे उन्होंने 1921 में उतार दिया था। वे उस परिवर्तन को नहीं समझते थे जो अनेक प्रकार से मंडली के भाग्य में घटित होना पहले ही प्रारंभ हो चुका था। वे उस कठोर सत्य को या तो अनदेखा कर रहे थे या उससे अनभिज्ञ

थे कि अब 1921 वाली स्थिति नहीं रही थी, अब वे अपने गायक-अभिनेता के चरमोत्कर्ष पर नहीं थे। उन्होंने इस ओर भी ध्यान नहीं दिया कि मंडली के रखरखाव पर प्रतिदिन बहुत खर्च हो रहा था। मंडली में अब अनेक उच्च वेतन भोगी सदस्य थे जिनमें लगभग 100 गायक-अभिनेता, बाल कलाकार तथा संगीत सहयोगी और इनके अतिरिक्त अन्य कर्मचारी भी थे जो प्रशासनिक, लेखा तथा अन्य कार्यों को करते थे।

एक अन्य नाटक "कान्होपात्रा" को रंगमंच पर प्रदर्शित करने के लिए बहुत अधिक खर्च किया गया जो एन० बी० कुलकर्णी द्वारा लिखा गया था। यह नाटक यशस्वी मराठी संत-कवयित्री, जिनका यही नाम था, के जीवन पर आधारित था जिसमें प्रमुख भूमिका बाल गंधर्व को करनी थी। अपने अभिनय में यथार्थ लाने के लिए नाट्यकलाकार ने एक व्यायाम प्रशिक्षक रख लिया जो उन्हें नियमित व्यायाम अभ्यास करवाकर पतला कर सके, ताकि उनका रूप वास्तव में "कान्होपात्रा" के अनुकूल जवान, पतली युवती का दिखाई दे जिसका अभिनय करना था। उन्होंने दृश्यों, रंगमंच सज्जा, समयानुकूल वेशभूषा तथा रंगमंच के अन्य उपकरणों पर खूब दिल खोलकर खर्च किया ताकि उनके प्रेमी दर्शक पहले की भांति उनका नया नाटक बहुत पसंद करें। दुर्भाग्यवश, उनके पुराने संगीत नाटकों की भांति यह नाटक उनके रंगमंच प्रेमियों का मन जीतने में सफल न हो सका।

दुर्भाग्य का एक अंश था—इस नाटक का नव-निर्मित भक्तिपूर्ण मराठी संगीत, जिसकी धुन में नाट्यकलाकार उसमें उलझा रहता था। उस भक्तिपूर्ण संगीत का निर्माण मास्टर कृष्णाराव द्वारा किया गया था। वस्तुतः नाटक में इसकी भूमिका उद्धारक की थी जिसके परिणामस्वरूप नाट्यकलाकार से रंगमंच से बाहर भी लोकप्रिय भक्ति गीतों को बार-बार सुनाने का निरंतर अनुरोध किया जाता था। और वे इन्हें तन्मय होकर गाते थे। ऐसा करने का परिणाम यह निकला कि रंगमंच से बाहर उनके भक्ति गीतों के संगीत-समारोह मंडली के व्यावसायिक जीवन का नियमित अंग बन गये। जिस प्रकार बार-बार बाल गंधर्व जन समारोह कर रहे थे उससे उनकी वाणी के प्रवाह को स्थायी रूप से हानि पहुंचने की आशंका हो गयी थी। यद्यपि उनका संगीत अपनी पुरानी झलक अथवा उसकी पूर्ण आभा की कुछ ही झांकियां दिखा सकने में समर्थ था, फिर भी इन संगीत-गोष्ठियों अथवा बैठकों ने विशाल जन समूह को आकर्षित किया था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि निकट भविष्य में गंधर्व मंडली की आय धीरे - धीरे किंतु निश्चित रूप से घटती जा रही थी, जबकि इसके स्वामी की ओर से अनावश्यक खर्च में कमी करने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। फिर भी, 1931 के अंत तक बचत एवं मितव्ययिता को ध्यान में रखकर गणपतराव बोदास की सेवायें समाप्त कर दी गयीं। इसके कुछ महीने बाद विनायकराव पटवर्धन भी चला गया। यहां तक कि दादा कटदरे जिन्होंने 11 वर्ष तक प्रबंधक के रूप में मंडली की अनुकरणीय दक्षतापूर्वक सेवा की थी, स्वास्थ्य संबंधी कारणों से मंडली छोड़ गये। वास्तव में वे मंडली की दुखद दशा देखकर इससे अलग होने पर विवश हो गये थे।

इधर मराठी रंगमंच के परदे पर एक नये महत्वपूर्ण विकास का रूप उभरना प्रारंभ हुआ। इसी समय के आसपास कुछ निर्भीक और साहसी महिला कलाकारों ने संगीत रंगमंच पर पदार्पण किया। इनमें हीराबाई बडोदेकर तथा ज्योत्सना भोले थीं, बाद में ये दोनों गायिका एवं रंगमंच अभिनेत्रियों के रूप में प्रसिद्ध हुयीं। पुरुष पात्रों द्वारा नारी अभिनय करने की पुरानी प्रथा कम होनी प्रारंभ हो गयी।

जैसी कि आशंका थी इससे गंधर्व मंडली की समाप्ति की घंटी बज उठी क्योंकि उसकी लोकप्रियता का पतन प्रारंभ हो चुका था। सच है कि बाल गंधर्व, जिसका पुराना सर्वोत्कृष्ट समय बहुत अच्छा था, अब भी अपने प्रेमी दर्शकों के प्रिय पात्र थे, किंतु निरंतर भक्ति संगीत की जन सभाओं की धुन में रहने के कारण उनके रंगमंचीय जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा , क्योंकि जन सभाओं में प्रवेश निशुल्क था। स्वाभाविक है कि इनमें उनके असंख्य संगीत प्रेमी भाग लेते थे। उतने ही उनके रंगमंच प्रदर्शन, जिनमें सदैव टिकट लगता था, पहले के बिल्कुल विपरीत दर्शकों को आकर्षित करने में असफल हो गये। इन्हीं परिस्थितियों में गंधर्व मंडली के कुछ नये नाटक जैसे "विधि-लिखित" और "अमृत-सिद्धि" जो कि दोनों बी०एस० देसाई द्वारा लिखे गये थे, जनता की सराहना पाने में असफल रहे।

इससे भी बुरा यह हुआ कि वे पूर्णतया गहराई तक कर्ज मे धंस गये तथा मंडली के आंतरिक मतभेद से क्रुद्ध हो गये। फिर भी उन्होंने अपने धनी प्रशंसकों द्वारा कर्ज से उबारने के लिए सहायता देने के प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

तंग आकर ऋण के बोझ से पीछा छुड़ाने के लिए, बाल गंधर्व अपनी प्रतिष्ठित मंडली को बंद करने तथा प्रभात फिल्म कंपनी से साझेदारी करने के लिए विवश हो गये।



12

बोलती फिल्मों के आने से विनाशक परिवर्तन

1932-33 में बोलती फिल्मों के आने तक, भारत में नाट्य परंपरा का गौरवपूर्ण स्थान रहा, विशेषतया पुरानी बंबई प्रेजीडेंसी और पुराने केन्द्रीय प्रांतों तथा बरार के मराठी भाषी क्षेत्रों में। वस्तुतः बोलती फिल्मों के आने से संगीत रंगमंच पूर्णतया बदल गया : वह इस तरह कि इनके आने से अधिकतर नाटक मंडलियां धीरे-धीरे समाप्त होने लगीं। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि मनोरंजन के नये साधन जिसमें आकर्षण, अनुरोध तथा अपनी तरह की चुनौती थी, ने दर्शकों को मनोरंजन के पारंपरिक ढंग से विमुख कर दिया।

फिर भी कुछ प्रमुख नाटक मंडलियों ने चुनौती का सामना करने का और स्वयं को बचाये रखने संकल्प किया। उन्होंने अपने रंगमंचीय कार्यक्षेत्र से फिल्म जगत में प्रवेश करने का निर्णय किया। गंधर्व नाटक मंडली उनमें से एक थी। अन्य नाटक मंडलियों में ललित कलादर्श मंडली थी जिसके स्वामी भोसले के देहांत के बाद बापूराव पेंढारकर थे और दीनानाथ मंगेशकर की बलवन्त संगीत मंडली थी।

जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, पेंढारकर और दीनानाथ भी अपने दर्शकों के प्रतिष्ठित गायक-अभिनेता थे। बाल गंधर्व की भांति, दोनों अपनी अभिनय-कला और संगीत के लिए प्रसिद्ध थे तथा वे भी अपने प्रेमी दर्शकों को अपनी व्यवहार - कुशलता से निरंतर आनंदित करते रहे थे।

किंतु जिन कारणों ने, इन तीनों नाट्यकलाकारों को फिल्मी जीवन चुनने के लिए प्रेरित किया, वे भिन्न थे। पेंढारकर और दीनानाथ के मामले में, यह उनका विश्वास और योग्यता थी जिसके बल पर वे रजत-पट के नये क्षेत्र में समान रूप से सफल होकर दिखाना चाहते थे। दूसरी ओर, इससे भिन्न, बाल गंधर्व के लिए यह अपने को बचाने का संघर्ष था — एक निराशापूर्ण प्रयत्न जिससे वे अपना ऋण उतार सकें।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यद्यपि उनके पिछले जीवन का सर्वोत्तम रमणीय अंश बीत चुका था, किंतु अभी भी उनका व्यवसाय फलफूल रहा था। वे अपने आपको दूसरी बार ऋण में गहराई तक धंसे हुए अनुभव कर रहे थे। यह, और इसके साथ बोलती

फिल्मों के आने तथा संगीत रंगमंच के पतन ने उन्हें नये कला क्षेत्र में सांत्वना पाने के लिए बाध्य किया। यद्यपि उन्हें सहजतया आभास था कि उस समय वे पचास वर्ष आयु के निकट थे। फिल्म जगत में प्रवेश करना उनके लिए निश्चय ही जोखिम का काम था, फिर भी एक अज्ञात विलक्षण अंतःप्रेरणा उन्हें जोखिम उठाने के लिए विवश करती दिखाई देती थी।

इस प्रकार बाल गंधर्व ने प्रभात फिल्म कंपनी से हाथ मिलाने का निर्णय किया, जिसने पहले ही उत्कृष्ट सफल मराठी तथा हिंदी फिल्मों की शृखला प्रस्तुत करके फिल्म जगत में हलचल मचा दी थी। उन्होंने वी० शांताराम (जिसने नवयुवक कलाकार के रूप में अपने व्यावसायिक जीवन का प्रारंभ गंधर्व मंडली से किया था) तथा उसकी कंपनी के अन्य साझेदारों के साथ एक अनुबंध किया। अनुबंध पर हस्ताक्षर होने के बाद, साझेदारों ने महान मराठी संत कवि एकनाथ महाराज, जिन्होंने लगभग छः शताब्दी पूर्व छूआछूत को समाप्त करना अपना लक्ष्य बना लिया था, के जीवन पर आधारित फिल्म बनाने का निर्णय किया।

भाग्य की विडंबना थी कि बाल गंधर्व को पुरुष की भूमिका दी गयी। बढ़ती आयु तथा सामान्य विपत्तियों का सामना करते हुए उस महान पुरुष ने वह भूमिका कुछ अनिच्छापूर्वक स्वीकार कर ली।

किंतु निर्माताओं तथा नाट्यकलाकारों के लिए और भी कठिनाई थी। और वह था फिल्म का नाम "महात्मा" जिससे विदेशी शक्तियां अप्रसन्न हो गयीं। वह समय था जबकि महात्मा गांधी अपने देशवासियों के लिए केवल "महात्मा" ही नहीं, अपितु छूआछूत की प्रथा के विरुद्ध लड़ने वाले धर्मयोद्धा भी थे।

दोनों निर्माताओं तथा प्रमुख अभिनेताओं को दुविधा में डालते हुए, सेंसर बोर्ड द्वारा फिल्म रोक दी गयी। निर्माताओं द्वारा फिल्म का नाम बदलकर "धर्मात्मा" रखने के बाद ही सेंसर ने रंगशालाओं में फिल्म प्रदर्शन की अनुमति देने की कृपा की थी।

कई कारणों से "धर्मात्मा" को भारी विफलता प्राप्त हुयी। पहले, तो इसके प्रदर्शन में एक वर्ष का विलंब हो जाने से कंपनी को गंभीर आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। दूसरे, फिल्म दर्शकों को आकर्षित करने में असफल रही। संत एकनाथ की भूमिका में बाल गंधर्व पुरुष पात्र के अभिनय के साथ पूरा न्याय न कर सके, और उनके जिज्ञासु दर्शकों का भी उनके प्रति मोह भंग हो चुका था जो उनको विस्मयकारी नारी भूमिका में देखने के आदी हो चुके थे।

जैसा कि बाद में बाल गंधर्व ने अपने मित्रों के सम्मुख स्वयं ही मान लिया था कि स्टुडियो का वातावरण जिसमें उन्हें आर्कलैंपों की तेज रोशनी में काम करना पड़ा और उसके साथ फिल्मी गीतों के लिए समय की कड़ी पाबंदी, उनके लिए सरल नहीं थी। पूर्णतया निराश होकर उन्होंने कंपनी को अपना अनुबंध समय पूर्व समाप्त करने के लिए कहा और कंपनी



'सुभद्रा' नाटक में सुभद्रा की भूमिका में बाल गंधर्व। अर्जुन की भूमिका में गोविंदराव तेम्बे।



के पी खादिलकर द्वारा लिखित 'स्वयंवर' नाटक में रुक्मिणी की भूमिका में बाल गंधर्व।



के. पी. खादिलकर द्वारा लिखित 'मान-अपमान' नाटक में बाल गंधर्व भामिनी की भूमिका में।
धैर्यधर की भूमिका में जोगलेकर।



फिल्म 'धर्मात्मा' में बाल गंधर्व का छाया चित्र।

ने, नाट्यकलाकार के प्रति श्रद्धा एवं सद इच्छावश, उनकी बात मान ली तथा उन्हें एकमुश्त धनराशि भी दे दी, किंतु उस धनराशि से वे कठिनतापूर्वक अपने ऋण का एक अंशमात्र ही लौटा सके।

इस दुखद घटना से बाल गंधर्व का बोलती फिल्मों से संपर्क समाप्त नहीं हुआ। और वे एक बार फिर परदे के प्रलोभन से वशीभूत हो गये। ऐसा हुआ कि उनके एक धनी नाट्यशाला प्रेमी, बाबूराव रूईकर, ने अपनी एक निजी फिल्म कंपनी बना ली। उसके मन में राजकुमारी-एवं-संत-कवयित्री, मीराबाई, के जीवन पर आधारित सफल रंगमंचीय नाटक "अमृत-सिद्धि" का फिल्मी रूप तैयार करने का विचार उत्पन्न हुआ। बाल गंधर्व ने पहले भी स्वयं प्रमुख भूमिका निभाते हुए रंगमंच पर यह नाटक खेला था। रूईकर का यह तर्क था कि "धर्मात्मा" में बाल गंधर्व इसलिए असफल हुए क्योंकि पुरुष भूमिका उनके उपयुक्त नहीं थी, यदि उन्हें पुनः उनकी प्रशंसनीय नारी भूमिका में फिल्मों में लाया जाय तो वे अपनी पुरानी स्थिति प्राप्त कर लेंगे।

इससे भी अधिक दुखद रूईकर की फिल्म की योजना थी। उन्होंने "रंगमंच पर बोलती फिल्म" प्रस्तुत की : इसमें संपूर्ण नाटक को रंगमंच पर प्रदर्शित करते हुए उसकी फिल्म बनायी जानी थी, जिसमें साथ ही नकली रंगमंच सज्जा तथा नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत करने के अन्य उपकरण भी थे। इन सबके लिए रूईकर के प्रति यही कहना न्यायसंगत होगा कि उसका पथप्रदर्शन (या पथभ्रष्ट) करने वाला यह यथार्थ था जिसे वह उसी नाटक के कुछ दृश्यों में देख चुका था, जो कि गुप्त रूप से एक अन्य फिल्म-निर्देशक, बाबूराव टोरने, द्वारा पहले ही ले लिए गये थे।

रंगमंच प्रदर्शन ठीक समय में फिल्मा लिया गया था। किंतु परिणाम खराब निकला। यद्यपि बाल गंधर्व ने स्वयं को अपनी प्रिय नारी भूमिका में पूर्णतया ढाल लिया था, फिर भी कैमरा उनकी आयु को न छिपा सका। इसके साथ ही पूर्णतया नकली और स्थिर रंगमंच को भी कैमरे ने बढ़ाचढ़ाकर दिखाया, जो कि नाट्यकलाकार तथा निर्माता के लिए अधिक निराशाजनक था और दर्शकों का फिल्म को अस्वीकार कर देना उचित ही था। इस तरह तब बाल गंधर्व ने, सदा के लिए, अपने प्रथम प्रेम, संगीत रंगमंच, के पास वापिस जाने का निर्णय किया।



13

यात्रा का अंत

जैसा कि विश्व विख्यात अंग्रेज नाटककार विलियम शैक्सपियर ने कहा था "समस्त संसार एक रंगमंच है", विश्व प्रसिद्ध नाट्यकलाकार बाल गंधर्व के लिए रंगमंच ही उनका संसार था। यदि ऐसा न होता तो उन्होंने प्रभात फिल्म कंपनी से समय पूर्व अपनी साझेदारी एक वर्ष से भी कम अवधि में समाप्त न की होती क्योंकि वे अपने पुराने रंगमंच को, चाहे वह जैसा भी रह गया था, पुनर्जीवित करने के लिए स्वयं को समर्पित करना चाहते थे।

इस कार्य में बाल गंधर्व ने मंडली के पुराने सदस्यों की भी सेवायें प्राप्त कीं जैसे जी० एम० लोंढे, तथा अनेक नये गायक अभिनेताओं को भी सम्मिलित किया जैसे कृष्णाराव चोनकर, नरेश और दुर्गाराम खेडेकर। (जो बाद में उनकी दूसरी पुत्री, पद्मा, से विवाह करके उनका दामाद बन गया था) उन्होंने स्वयं भी फिर से अपना पुराना स्त्री अभिनय करना प्रारंभ कर दिया था । कई अवसरों पर उन्होंने पुरुष अभिनय भी किया । किंतु तब, उस आयु में और गिरते हुए स्वास्थ्य के साथ वे जो सब दे सके वह उनकी पूर्व रमणीयता की क्षणिक झलक मात्र थी । यदि उन्होंने दर्शकों को आकर्षित किया तभी तो यह संभव हो सका कि रंगमंच प्रेमी उनके नाटक देखने के लिए खिंचे चले आये, चाहे वे उनके प्रति अपने असीम प्रेम के कारण आये अथवा घर से दूर होने के कारण एवं जिज्ञासा वश आये थे।

किंतु सदा के लिए बिछुड़ने का अवसर तो आना ही था । जनवरी **1944** में बाल गंधर्व ने मंडली से अपना नाता तोड़ लिया । ऐसा करके उन्होंने संस्था को हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की गायिका गौहरबाई कर्नाटकी, के हाथों में सौंप दिया । वह उनके संगीत से वर्षों से प्रभावित थी और अपने गाने के लिए उन्हें अपना आदर्श मानती थी।

गौहरबाई का बाल गंधर्व से संपर्क होने के कारण तीव्र विरोध उत्पन्न हुआ जो न केवल उनके परिवार और मित्रों की ओर से-था अपितु उसके प्रभावशाली समर्थकों की ओर से भी था । किंतु वे अपने निर्णय पर अटल रहे । इससे भी बुरा यह हुआ कि मंडली के

मामलों में उसे सर्वोच्च बनाने के साथ उन्होंने कन्नड़-भाषी स्त्री को अपने स्थान पर नारी भूमिकाएं करने के लिए कह दिया ।

ऐसा करने से सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में भी हलचल मच गयी, क्योंकि गौहरबाई के संपर्क के कारण महान नाट्यकलाकार के पारिवारिक जीवन का कलह विच्छेद की पराकाष्ठा पर पहुंच चुका था। उन्होंने गौहरबाई के साथ बंबई रहना पसंद किया, जबकि उनकी पत्नी लक्ष्मीबाई तथा परिवार के अन्य सदस्य पुणे में अकेले रहने लगे।

परिवार की इन दुखद घटनाओं के मोड़ पर पूर्णतया टूट चुकी लक्ष्मीबाई की मृत्यु पुणे में दयनीय स्थिति में हुई। उसके अंतिम क्षणों में उसका यशस्वी पति भी उसके पास न था । यह सर्वविदित है कि अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद बाल गधर्व ने गौहरबाई से कानूनी विवाह कर लिया था। उनका गौहरबाई से संसर्ग अंतिम दिन तक विवादास्पद बना रहा।

क्योंकि पुनर्संस्थापित गंधर्व मंडली का भाग्य भी निरंतर तीव्र गति से अस्त हो रहा था, बाल गंधर्व ने अपने दर्शकों को मुग्ध करने के लिए जनता में भक्ति गीतों के संगीत-समारोह आयोजित करने का अपना पुराना कार्य फिर से आरंभ कर दिया। जनता की मांग पर उन्होंने अपने पुराने सफल रंगमंच नाटक भी रंगपटल पर सम्मिलित किये। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम तथा कान्होपात्रा जैसे महान मराठी संत कवियों के अभंग गीत गाने के साथ अपने रंगपटल पर विविधता लाने तथा अधिक से अधिक दर्शकों को आकर्षित करने के लिए उन्होंने मीराबाई, कबीर, तुलसीदास और अन्य महान प्रतिभाओं के हिंदी भजन भी गाये। यह उनका प्रायः पूर्णकालिक कार्यक्रम बन गया था जब तक कि 1952 में अधरंग ने उन्हें असमर्थ नहीं कर दिया।

किंतु जिस प्रकार का सदभाव, प्रशंसा और आदर उनको अपने स्वर्णकाल में मिला उसमें अन्तिम समय तक कोई कमी नहीं आयी। 1944 में बंबई में मराठी रंगमंच शताब्दी समारोह के अवसर पर उनको सर्वसम्मति से मराठी नाट्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुनना उनके प्रति लोगों की सच्ची श्रद्धा का प्रतीक था । इस अवसर को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रवर्तकों ने उनके प्रसिद्ध नाटक "सुभद्रा" को रंगमंच पर दिखाया, जिसमें उन्होंने, जनता की पुरजोर मांग को पूरा करने के लिए, अर्जुन का अभिनय किया, जबकि सुभद्रा की नारी भूमिका यशस्वी शास्त्रीय संगीत गायिका, हीराबाई बड़ोदेकर ने निभायी।

इसी प्रकार का जन सम्मान उन्हें 1964 में उनके 75 वें जन्मदिन पर मिला। उस अवसर को एक विशाल उत्सव के रूप में मनाया गया जिसमें उनके कुछ प्रसिद्ध नाटक भी दिखाये गये । उन्हें राजकीय सम्मान, बहुत देर से मिला, और मिला भी बहुत कम। मार्च 1955 में रंगमंच अभिनय के लिए उन्हें केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा राष्ट्रपति पुरस्कार के लिए मनोनीत किया गया । उनके गृह राज्य, महाराष्ट्र सरकार की ओर से सम्मान उन्हें और बाद में जनवरी 1961 में 300 रुपये मासिक पेंशन के रूप में मिला । चार वर्ष बाद वह धनराशि बढ़ाकर 7500 रुपये मासिक कर दी गई । 1964 में नाट्यकलाकार को भारत

सरकार ने पदम भूषण की उपाधि से अलंकृत किया ।

1964 में गौहरबाई के देहांत के बाद बाल गंधर्व बिल्कुल अनाथ हो गये और वह भी पूर्णतया अपकर्ष की स्थिति में । कहा जाता है कि उनकी देखभाल करने वाली केवल गौहरबाई की नौकरानी थी । उनके तेजी से बिगड़ते हुए स्वास्थ्य एवं दुर्दशा का दयनीय समाचार सुनकर उनके बहुत से संबंधी और विश्वसनीय मित्र उनके बंबई निवासस्थान पर आये और उनका इलाज करवाने के लिए उन्हें वहां से पुणे ले जाने का प्रबंध किया। वहां वे लगभग तीन मास तक मूर्च्छा की स्थिति में रहे । उन्हें एक प्रसिद्ध नर्सिंग होग में रखा गया और उन्हें होश में लाने के भरसक प्रयत्न किये गये । देश के सभी भागों के रंगमंच प्रेमियों ने "नट सम्राट" के स्वस्थ हो जाने की ईश्वर से प्रार्थना की । ऐसा कहा जाता है कि राज्य के भूतपूर्व मुख्य मंत्री तथा तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री और कलाप्रेमी स्वर्गीय वाई० बी० च्वहाण ने वरिष्ठ नाट्यकलाकार के उपचार के लिए एक दुर्लभ औषधि विदेश से मंगवाने की व्यवस्था की थी। किंतु बहुत देर हो चुकी थी। वे पुणे में अपना स्वर्गवास होने से 100 दिन पहले से ही मूर्च्छित अवस्था में थे।

अंततः अद्वितीय "नट सम्राट", नाट्यकलाकारों के नरेश, जो अब निस्सहाय हो चुके थे और लम्बे समय से अधरंग से ग्रस्त थे, ने बेहोशी की हालत में ही 15 जुलाई 1967 को अंतिम सांस ली। उनकी अंत्येष्टि एक हड़बड़ी में किया गया कार्य था जिसका कारण केवल भावी पीढ़ियां ही समझ सकती हैं। उनके निधन के साथ ही एक गौरवमय युग का भी अंत हो गया।



14

बाल गंधर्व : गायक तथा अभिनेता के रूप में

मुझे अच्छी तरह याद है कि उनके कुछ विरोधियों ने जिनमें से अधिकतर गंधर्व मंडली के पुराने सदस्य थे, बाल गंधर्व के मूलतः शास्त्रीय संगीत गायक होने की धारणा के प्रति अनावश्यक विवाद खड़ा कर दिया था । विवाद अनावश्यक था, क्योंकि इसका कोई अर्थ नहीं था । उनके निंदकों की यह धारणा थी कि उन्हें शास्त्रीय संगीत में बिल्कुल शून्य समझना चाहिए जबकि वे उन्हें केवल " नट सम्राट" मानते थे।

ऐसा नहीं था कि बाल गंधर्व के निंदक उनके शास्त्रीय संगीत के आधार से अनभिज्ञ थे । शायद वे जानबूझकर इस तथ्य से अनभिज्ञ बने हुए थे क्योंकि विवाद को जारी रखना उनके अनुकूल था । यह सत्य है कि बाल गंधर्व ने अपने बहुत से सहयोगियों की भांति शास्त्रीय संगीत का चुनाव प्रदर्शन के लिए नहीं किया क्योंकि गायक-अभिनेता के रूप में उन्होंने अपने प्रेमी दर्शकों के बीच इतना अधिक नाम कमाया था जितना कि उनके अधिकतर पूर्वजों तथा समसामयिकों ने शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में हिंदुस्तानी रागों पर आधारित अनंत विविध पदों तथा सुगम शास्त्रीय संगीत के विभिन्न रूपों जैसे ठुमरी, टप्पा और होरी द्वारा भी नहीं कमाया था।

इस संदर्भ में जानकारी के लिए बताया जा रहा है कि स्वयं बाल गंधर्व अपने प्रमुख परामर्शदाता, भास्करबुवा बाखले के संरक्षण में अपने प्रशिक्षण के बारे में क्या कहते थे। अपने संरक्षक को प्रशिक्षण के दौरान प्रशिक्षक कहते थे कि शास्त्रीय संगीत गायन की तकनीकियों में अधिक मत जाओ। उन्होंने उन्हें सिखाया था कि ऐसा गाओ जो कि मधुर और भावपूर्ण हो, तथा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि गाना परिस्थिति के अनुकूल हो, यदि ऐसा करने में परंपरागत शास्त्रीय संगीत गायन शैली का कुछ उल्लंघन भी हो जाये तो कोई बात नहीं ।

क्या कोई भी, पूरी ईमानदारी से, उनके संगीत की मौलिकता और कला-मर्मज्ञता से इंकार कर सकता है ? सच तो यह है कि सदैव महान प्रकांड-पंडित जैसे अल्लादिया खान (जो संयोगवश उनके शुरू के गुरु थे) और मल्का जान प्रायः उनके प्रदर्शन में उनके कुछ

प्रिय रागों पर आधारित पदों को सुनने आया करते थे, विशेषतया उन गीतों को जिन्होंने उनकी रूढ़िगत रागात्मक शैली में परिवर्तन करके जादुई ढंग से गाते हुए सम्मोहित कर दिया था।

बाल गंधर्व के निष्पक्ष किंतु कटोर रसिकों के विचारों के बारे में भी कुछ कहा जाय। उनके विचारों पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि वे उनके लंबे तथा घटनापूर्ण जीवन में साथ थे ।

उनके अनुसार गायक के रूप में बाल गंधर्व की प्रगति एवं विकास चार विभिन्न चरणों से गुजरा था । पहले चरण में **1905** से **1911** तक के वे छः वर्ष आते हैं जबकि बाल गंधर्व के गीतों में अपरिपक्वता का अंश दिखाई देता था । जबकि उनका अभ्यंतर संगीतपूर्ण था, वे तान के विविध रूपों से परिपूर्ण थे जिससे वह लावणी और टप्पा का अद्‌भुत मिलन प्रतीत होता था । उस रचना में सामंजस्य की कमी भी थी ।

फिर भी बाल गंधर्व के दर्शक उनसे मोहित थे जबकि वे "सुभद्रा","शाकुंतल", "शारदा", "मूकनायक" तथा ऐसे ही अन्य संगीत नाटकों में अपनी प्रारंभिक भूमिकाएं कर रहे थे। उनकी लोकप्रियता का जितना रहस्य उनके नैसर्गिक संगीत में था उतना ही उनकी मोहक नारी भूमिकाओं में भी था ।

अगले महत्वपूर्ण पांच वर्ष बाल गंधर्व की ख्याति में वृद्धि का दूसरा चरण थे । वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि उन्होंने खादिलकर के "मान-अपमान" में अपनी गायक भूमिकाओं द्वारा अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की थी। इसी समय में उन्होंने बाखले और तेम्बे से संपूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त किया था , जिन्होंने उनके गीतों के लिए धुनें तैयार कीं थीं जो पूर्वी उत्तर प्रदेश में अंतर्निहित होरी, ठुमरी, टप्पा और दादरा जैसी शैलियों पर आधारित थीं । दोनों आविष्कारक संगीतकारों नें गौहरजान, मौजुद्दीन खान, मल्का जान तथा प्यारा साहब जैसे महान कलाकरों के लोकप्रिय हिंदी गीतों की धुनें ग्रामोफोन रिकार्डों द्वारा विवेकपूर्वक प्राप्त कर लीं थीं। किंतु यहां यह स्पष्ट किया जाता है कि बाल गंधर्व, जिन्होंने गीतों के अर्थ और विषय की अपेक्षा स्वर और शैली पर अधिक बल दिया, ने संगीत नाटक के सत्व को गौण बना दिया।

यह सत्य है कि जैसे जैसे समय गुजरता गया, यह संगीत था, न कि नाटक निर्माण का कोई अन्य सशक्त पहलू, जिसे अग्रसरता प्राप्त हुई। संगीत-प्रेमी दर्शक मनोरंजन की इस विधा में बिंध गये। ऐसा कहा जाता है कि एक सामान्य मराठी संगीत नाटक प्रायः संगीत महफिल का रूप धारण कर लेता था और यही एक प्रमुख कारण समझा जाता है जिसके परिणामस्वरूप अंततः शनै शनै किंतु निश्चय ही इसकी लोकप्रियता का पतन हो गया।

अगले सात वर्ष , जिसमें **1916** से **1923** तक का समय आता है, तीसरा चरण था जिसमें बाल गंधर्व संघर्ष तथा कीर्ति के पथ पर समान रूप से आगे बढ़ते गये । "स्वयंवर",

की धुनें बनायीं थीं । यह उल्लेखनीय है कि प्रतिभाशाली सुंदरबाई अपनी पूरब गायकी की सर्वोत्तम प्रतिनिधि थी। उसे अपनी योग्यता के अनुरूप प्रसिद्धि नहीं मिली।

1924 से **1934** के बीच अंतिम चरण में गंधर्व मंडली के बंद होने तक के दस वर्ष आते हैं, जिसमें बाखले के सर्वश्रेष्ठ शिष्य मास्टर कृष्णाराव ने "कान्होपात्रा", "सावित्री", "अमृत-सिद्धि" और "विधि-लिखित" नाटकों के गीतों को धुनें प्रदान कीं थीं । यदि इन नाटकों के बहुत से गीत दीर्घकाल तक लोकप्रिय न रह सके तो इसका कारण स्वयं वे नाटक ही थे, जिनमें वे गीत गाये गये, जो टिकट-घर पर सफल न हो सके थे । किंतु फिर भी कुछ गीत बचे रहे और भावी पीढ़ियों के रंगमंच गायकों के साथ निरंतर बहुत लोकप्रिय हुए ।

बाल गंधर्व उत्कृष्ट संगीतज्ञ रहे चाहे वे रंगमंच संगीत का दैदीप्यमान अद्वितीय प्रतिनिधि बनकर चमके थे । उनकी आवाज ही वस्तुतः उनका सौभाग्य थी । संवेदनशीलता में उनकी तुलना भूकंप-लेखी से की जा सकती थी । उनके अलौकिक स्वर और ताल में लेजर किरण जैसी सूक्ष्मता थी । एक सर्वोत्तम संगीतज्ञ के ये ही सर्वोत्कृष्ट गुण हैं और इन्हीं गुणों द्वारा उन्होंने "मराठी नाट्य संगीत" को एक ऐसा नया आयाम प्रदान किया जैसा उनसे पहले या उनके बाद कोई और नहीं दे सका । इस प्रकार उनके संगीत को भली भांति "घराना" की संज्ञा दी जा सकती है, उनकी व्यक्तिगत शैली और दृष्टिकोण के कारण उनके पदों के रिकार्ड ने उनके अद्वितीय संगीत के अभिकथन को प्रशंसा दिलाई ।

एक पश्चिमी आलोचक ने नाट्यकलाकार की कला पर बोलते हुए कहा था :-

> " एक कलाकार का प्रमाण उसके सर्जनात्मक प्रयास में है, और यद्यपि वह जिसे हम अंतर्ज्ञान कहते हैं, द्वारा प्रेरित होता है, फिर भी तर्क से अधिक अंतर्ज्ञान को प्रशिक्षण और निर्देशन की आवश्यकता होती है .... परिपूर्ण गायक की पहचान उसकी प्रतिभा नहीं अपितु उसका व्यवहार-कौशल है, जो कि व्यापक मानव संस्कृति का परिणाम है, और इसे प्रशिक्षण चाहिए जो कि अभ्यास और लीपा-पोती से नहीं मिलता ।"

इन प्रेक्षणों की सत्यता गायक अभिनेता के रूप में बाल गंधर्व की सभी अद्वितीय उपलब्धियों को लगभग पूर्णतया दर्शाती प्रतीत होती है ।

एक बार एक प्रश्नकर्ता ने उनसे पूछा कि उन्होंने स्त्री की भूमिका करना तथा उनके भावों को इतने अच्छे ढंग से अभिव्यक्त करना कहां से सीखा था । आंखों में कृतज्ञता की चमक लिए बाल गंधर्व ने तुरंत कहा कि उनकी मां और बहन उनके सच्चे परामर्शदाता थे । वे सदैव उनकी स्वाभाविक शालीनता, उनके चरित्र की निष्कपटता और उनके कार्य तथा विचार की सौम्यता के बारे में वाग्मितापूर्वक बोलते थे । अति संवेदनशील तरुण बाल गंधर्व केवल उन्हें देखकर और उनकी प्रशंसा करके संतुष्ट होते थे । फिर वे स्वयं को उनके अनुरूप ढालने का प्रयत्न करते थे, और भूल जाते थे कि वे एक पुरुष हैं । उन पर भाव स्वाभाविक रूप में आ जाते थे । उन्हें अभिनय नहीं करना पड़ता था---उन्हें तो केवल उनकी

तरह स्वाभाविक बनना पड़ता था।

वस्तुतः, वे न केवल असाधारण प्रतिभावान थे अपितु एक सुसंस्कृत व्यक्ति भी थे। नम्रता उनके अंतःकरण के मर्म में समाई हुई थी और वे अपने निकटतम मित्रों तथा प्रशंसकों के बारे में सरलता से बताते थे जिनके वे रंगमंच पर अपनी सफलता के लिए आभारी थे।

इसी प्रकार भाव बिह्वल होकर बाल गंधर्व उनके बारे में भी बताते थे जिन्होंने उन्हें संगीत तथा चरित्र-अभिनय का संपूर्ण प्रशिक्षण दिया । उन्हें रंगमंच गायक के रूप में ढालने में, वे गुरुओं की लंबी सूची बताते थे जिसके प्रारंभ में महबूब खान थे, जिन्होंने उन्हें हिंदुस्तानी संगीत का आधारभूत प्रशिक्षण दिया था । वे उतने ही कृतज्ञ अप्पैया बुवा के भी थे, जिन्होंने उनका आगे चलकर किशोरावस्था में उनके कोल्हापुर में रहने के दौरान मार्गदर्शन किया था ।

फिर आते हैं उनके सर्वश्रेष्ठ गुरु, बाखले, जो उस समय के सर्वोत्कृष्ट हिंदुस्तानी गायकों में से एक थे और जिनकी "गायकी" में ग्वालियर, आगरा और अटरौली-जयपुर के तीन प्रमुख समकालीन "ख्याल घरानों" का पूर्ण तत्व विद्यमान था । वे असाधारण गुणों से परिपूर्ण रचयिता संगीतकार भी थे और उन्होंने गंधर्व मंडली के साथ रहते हुए मराठी रंगमंच संगीत में एक नयी विचारधारा का मार्ग प्रशस्त किया ।

बाल गंधर्व गोबिंदराव तेम्बे तथा मास्टर कृष्णाराव , जो कि उनके गुरु भाई थे, उन्हें भी अपने परामर्शदाताओं में मानते थे । वे अहमद जान थिरकवा और कादर बक्ष द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के प्रति भी आभार प्रकट करते थे जिन्हें उन्होंने अपनी मंडली में वाद्ययंत्रों पर सामूहिक रूप से कार्य करने के लिए नियुक्त किया था।

उन्हें इतना परिपूर्ण चरित्र अभिनेता बनाने के लिए, बाल गंधर्व विशेषतया गणपतराव बोदास के प्रति आभार प्रकट करते थे जो कि कंपनी में उनका साझेदार था तथा जिसने विविध भूमिकाओं में नायक का अभिनय भी किया था, और नाटककार के० पी० खादिलकर एवं आर० जी० गडकरी को अपना गुरु मानते थे । वे अपनी सफलता का श्रेय दो राजाओं, बड़ौदा के सयाजीराव गायकवाड तथा कोल्हापुर के छत्रपति साहू को देते थे जिनके जीवनकाल में उन्हें संरक्षण प्राप्त हुआ था ।

मुड़कर देखने पर किसी को भी इसमें संदेह नहीं होता कि बाल गंधर्व की सर्वतोमुंखी प्रतिभा उनके हृदय-स्पर्शी संगीत संयोजन तथा भूमिका को अभिनीत करने की प्रवीणता में है । वस्तुतः वे इस शताब्दी के अद्वितीय गायक थे । चाहे वह भूमिका शर्मीली रुक्मिणी की हो या अधीर सुभद्रा की, प्रेमातुर भामिनी की हो या व्यथित द्रौपदी की, दयनीय सिंधु की हो या नखरेवाली रेवती की --- जिस भूमिका को भी उन्होंने निभाया उसमें पूर्णतया विलीन हो गये और उस भूमिका को सजीव कर दिया था । उनकी अभिनय कला में समस्त मानवीय मनोदशाओं एवं भावों का पूर्ण समावेश था । वे अपनी मनोदशाओं एवं भावों



'एकच प्याला' नाटक में सिंधु की भूमिका में बाल गंधर्व चित्रांकन गणपतराव लाड द्वारा।



'शाकुंतल' नाटक में शकुंतला की भूमिका में बाल गंधर्व (मध्य में)।

को अपने गीतों में भर देते थे जो कि परिस्थिति के अनुकूल होते थे । वे इतनी संवेदनशीलता एवं भावुकतापूर्वक गाते थे कि उनकी भावपूर्ण अभिव्यक्ति उनके रंगमंचीय गीतों के रिकार्ड सुनने पर भी अनुभव होती था।

ऐसा समझा जाता है कि बाल गंधर्व के दीर्घ एवं उत्कृष्ट जीवनकाल में विभिन्न अवसरों पर उनके लगभग 200 डिस्क 78 आर० पी० एम० के रिकार्ड किये गये । उनमें प्रतिष्ठित गीतात्मक एवं संगीतात्मक सद्‌गुणों का अनूठा मिलन ही उन्हें उत्कृष्टता प्रदान करता है। चाहे कोई भी गीत हो, उनकी मुखरित पंक्तियां गीत की पंक्तियों द्वारा अभिव्यक्त बदलते हुए भावों को पूर्णतया स्वाभाविक लहर में बदल देती थी।

इनमें से बहुत से रिकार्ड लंबे समय से प्रसारण में नहीं आये। अभी हाल ही में इनमें से कुछ अनमोल रत्नों को ढूंढकर एक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय कंपनी द्वारा उनकी जन्मशताब्दी के स्मरणोत्सव में फिर से जारी किये गये । वर्तमान पीढ़ी के रंगमंच संगीत प्रेमियों के लिए रिकार्ड किया गया रंगपटल मराठी नाट्य संगीत की एक अदभुत देन है जो एक चमत्कारी पुरुष बाल गंधर्व द्वारा की गयी है । और यह वह रिकार्ड किया हुआ संगीत है जो अपूर्ण होने पर भी इसमें प्रतिष्ठित गीत और संगीत के सदगुणों के असाधारण मेल के कारण अद्वितीय रहा है।

15



बाल गंधर्व:
रंगमंच से अलग व्यक्ति के रूप में

रंगमंच के अतिरिक्त सर्वोच्च नाट्यकलाकार बाल गंधर्व एक मनुष्य के रूप में कैसे थे? उन अलौकिक पुरुष का व्यक्तिगत और घरेलू जीवन कैसा था? इस प्रकार के प्रश्न वर्तमान और भावी पीढ़ियों के मस्तिष्क में उत्पन्न होने उपयुक्त ही हैं। यहां तक कि उनके समकालीन प्रेमी दर्शकों में से भी बहुत से व्यक्तियों ने ऐसे प्रश्नों के उत्तर चाहे होंगे।

बाल गंधर्व जितने महान गायक थे उतने ही महान व्यक्ति भी थे। उनके उत्कृष्ट मानववाद और अपने साथियों का परोपकार चाहने के हृदयस्पर्शी भाव का पता इससे चलता है कि वे इतनी बड़ी संस्था के कार्यों की व्यवस्था किस तरह से करते थे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वह एक बहुत बड़ा प्रतिष्ठान था जिसमें सौ से भी अधिक व्यक्ति नियुक्त थे। उनमें से लगभग सभी एक ही छत के नीचे रहते थे। वे एक ही सामूहिक रसोईघर में खाना खाते थे। रसोईघर में कार्य करने के लिए एक दर्जन बावर्ची थे और इतने ही उनके सहायक थे। भोजन पौष्टिक और स्वादिष्ट होता था जिसके साथ ताजा दूध प्रतिदिन दिया जाता था। जब वे अपने कर्मचारियों के साथ खाना खाते थे, उस समय उन्होंने चाय या काफी आदि पेय पदार्थों को पीने की मनाही की हुई थी, और इसके अतिरिक्त वे नियमित रूप से गाय का दूध पीने पर जोर देते थे और वह बिना बाधा के मिलता रहे इसके लिए उन्होंने कम्पनी में दुधारू गायों का एक झुंड रखा हुआ था जो उस चलती फिरती मंडली का एक भाग था। किसी कर्मचारी के बीमार हो जाने पर, वे उसकी देखभाल व्यक्तिगत रूप से प्रेम, उदारता और सहानुभूतिपूर्वक किया करते थे। संक्षेप में गंधर्व मंडली एक विशाल संयुक्त परिवार की तरह थी जिसके मुखिया बाल गंधर्व थे।

मद्यत्यागी बाल गंधर्व सफलतापूर्वक उन सब प्रलोभनों से दूर रहे जिन पर एक ऐसे व्यक्ति को विजय पाना कठिन था जिसने अपना जीवन रंगमंच या फिल्म जैसे कपट एवं चमक दमक पूर्ण जगत में गुजारा हो। यह क्षेत्र में इससे श्रेष्ट और कौन होगा।

हमारे इस समय में शायद यह सब अविश्वसनीय प्रतीत हो, किन्तु यह सत्य था।

नाट्यकलाकार के निकटतम साथी जो उनके व्यक्तिगत जीवन के इस पहलू के साक्षी हैं, उन्होंने उनके गौहरबाई से अंतिम कुछ वर्षों में संबंध तथा आखिर में विवाह के रहस्य पर परदा डाले रखा।

बाल गंधर्व एक पारिवारिक व्यक्ति थे जो कि अपनी पत्नी लक्ष्मीबाई के विश्वसनीय थे, जब तक कि गौहरबाई ने उनके जीवन में पदार्पण नहीं किया था। वे अपने बच्चों तथा अपने बड़े परिवार के अन्य सदस्यों के भी प्रिय थे। उनके अनेक निकट सम्बन्धी थे जो कि सहायता और रखरखाव के लिए उन पर निर्भर थे। किन्तु वे उनसे वैसा ही प्रेम व्यवहार करते थे जैसा व्यवहार अपनी पत्नी और बच्चों से करते थे। दुर्भाग्यवश , उन्होंने अपने बहुत से बच्चों को किशोर अवस्था में मरते देखा, किन्तु उन्होंने उनके निधन को अनुकरणीय साहस एवं धैर्य से सहन किया।

बाल गंधर्व की योग्यता, उनकी सुंदरता और उनकी प्रसिद्ध मंडली तथा उनकी कला के प्रति निष्ठा के अनेक आख्यान हैं। उन्होंने महिलाओं की वेशभूषाओं के नये फैशन चलाये जबकि पुरुष उनके रमणीय सौंदर्य की अत्यधिक प्रशंसा करते थे। उन्होंने साड़ियों और जेवरों के इतने रिवाज प्रचलित किये कि जब उनकी शौकीन धनी महिला दर्शक बाजार में उसी तरह की चीज खरीदने जातीं तो वे उन्हें मिल नहीं सकती थीं। वे वेशभूषाओं के रंग, नमूने, बनावट तथा चयन करने में सदैव सतर्क रहते थे और आदेश दे कर बनवाते थे। परम्परागत नौ गज लम्बी साड़ियों के स्थान पर वे दस गज लम्बी साड़ी पहनते थे ताकि अधिक प्रभाव पड़े। कई बार वे अपने जेवरों का नमूना भी स्वयं तैयार करते थे। वे महाराष्ट्र की विवाहित स्त्रियों के नाक का कोका और नथ, अपने ही ढंग से पहनते थे और अपने प्रेमी दर्शकों द्वारा हर्षोन्माद से भेजे गये नये केशविन्यास को धारण करते थे। वे अपने स्त्री वेश में इतने वास्तविक दिखाई देते थे कि महिलाओं की भी ड़ में उन्हें कोई पहचान न पाता था।

वास्तव में उनके स्वर्ण काल की इतनी अधिक कथायें हैं जो उनके समकालीन प्रिय दर्शक बताते हैं कि किस प्रकार उन्होंने बिना पता चले महिलाओं की भीड़ में शामिल हो कर एक शर्त जीती थी। एक किवंदंती में तो यहां तक कहा गया है कि वे एक बार विवाहित महिलाओं के एक समारोह (जो कि “हल्दी-कुंकु” के नाम से जाना जाता है) में बड़ौदा महल में चले गये और कोई भी उन्हें पहचान न सका, यहां तक कि राज्य की महारानी भी न पहचान सकी।

फिर भी, बाल गंधर्व स्वयं ऐसी कथाओं को विनम्र मुस्कान के साथ असत्य कह दिया करते थे। वे कहा करते थे कि उनके बारे में जैसा कहा गया उन्होंने वैसा कुछ नहीं किया उनके विचार से, वे कथायें उसके प्रिय दर्शकों के उनके प्रति प्रेम और प्रशंसा की सर्वश्रेष्ठ प्रतीक थीं।

फिर भी, एक कहानी तो सत्य है, जो इसका ज्वलंत उदाहरण है कि मंडली में उनके

साथ रहने वालों के मन में उनके प्रति कितना आदर एवं श्रद्धा थी। नाट्यकलाकार के साथ बिताये गये दिनों को याद करते हुए तालवादक संगीताचार्य अहमद जान थिरकवा ने एक बार इस लेखक को बताया, " वे दिन थे जब मुझे केवल दो महान विभूतियों की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ – एक तो थे रामपुर के नवाब और दूसरे थे बाल गंधर्व , संगीत के बादशाह। मेरा सौभाग्य था कि मैं दोनों के संरक्षण में रहा था"। नाट्यकलाकार भी दर्शकों के मन में अपने प्रति युगांतरकारी निष्ठा को समझने में कुछ कम कृतज्ञ नहीं थे, उन्होंने अपने मनोभाव दर्शकों को " माझे अन्न दाते " (मेरे अन्नदाता) कहकर प्रकट किये थे।

इन सब असाधारण मानवीय गुणों के होने पर भी, बाल गंधर्व में कुछ स्वाभाविक कमियां भी थीं, जो उनके व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक जीवन में समान रूप से सर्वनाश का कारण सिद्ध हुईं। वे भोले भाले थे और उनमें उनका हित चाहने वालों से मधुर संबंध बनाये रखने के गुण की बहुत भारी कमी थी, उनके मित्रों और प्रशंसकों की तो बात ही छोड़िये। संकट कालीन अवसरों पर तो वे बहुत ही हठी तथा न सुधारे जा सकने वाले हो जाते थे। यदि ऐसा न होता तो वे अपने शुभचिंतको द्वारा चेतावनी देने के बावजूद भी बाला साहेब पंडित जैसे अविश्वसनीय कर्मचारी पर विश्वास न करते। उनका अविवेकपूर्ण व्यवहार कई बार गंभीर वैमनस्य उत्पन्न कर देता था, जो गणपतराव बोदास तथा ऐसे ही बहुत से अन्य महत्वपूर्ण साथियों से मनमुटाव की चरम सीमा तक पहुंच जाता था। अपनी इसी व्यवहार कुशलता की कमी के कारण उन्हें एक बार मानहानि संबंधी नोटिस का सामना करना पड़ा था जिसे किसी और ने नहीं अपितु पी० एस० लाड ने दिया था जो विपत्ति की घड़ियों में सदैव उनके साथ रहते थे।

इतनी ही दुखदायी उनकी बर्फ के ठंडे पानी की सनक थी । वे अधिक से अधिक सर्दी के मौसम में भी बर्फ के ठंडे पानी से स्नान करना नहीं छोड़ते थे। और ऐसा वे उस समय भी करते रहे जब उनकी विनाशकारी आदत उनके स्वास्थ्य, विशेषतया उनकी आवाज, से खेल रही थी। गंधर्व मंडली के स्वर्णिम काल में ऐसे अवसर कम नहीं आये जबकि उनकी आवाज खराब हो जाने के कारण रंगमंच प्रदर्शन स्थगित करने पड़े। किन्तु उनके प्रेमी दर्शक इन सब बातों को सहजतापूर्वक लेते थे। वस्तुतः, बाल गंधर्व के प्रति उनकी निष्ठा अंतिम समय तक लोकप्रसिद्ध बनी रही।



16

गंधर्व परंपरा

संगीत गोष्ठियों में मराठी नाट्य संगीत जो अविश्वसनीय लोकप्रियता निरन्तर प्राप्त करता आ रहा है उससे महाराष्ट्र के संगीत रंगमंच प्रेमियों में इसके पीढ़ी दर पीढ़ी चिरस्थायी होने का पता चलता है। सत्य है कि इस प्रकार के चमत्कार में भावी पीढ़ी के प्रतिभाशाली गायक-अभिनेताओं का भी योगदान होना चाहिए जो कि संस्कृति के क्षितिज पर कई दशाब्दियों तक दिखाई देते रहे। किन्तु इस बारे में कोई दो राय नहीं कि बाल गंधर्व उनमें सर्वोत्कृष्ट थे और अभी भी सर्वश्रेष्ट हैं ।

बाल गंधर्व की विलक्षण प्रतिभा ने गायक एवं अभिनेता के रूप में न केवल महाराष्ट्र में अपितु मराठी-भाषी क्षेत्रों से बाहर भी उनके चिरस्थायी दर्शक प्रेमी बना दिये। दर्शक प्रेमियों के इस शिष्य समुदाय को "परंपरा" की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा, जैसा कि पहले कहा जा चुका है। किन्तु बाल गंधर्व के लिए, इस पारंपरिक शब्द को उसके गुण के आधार पर और भी अधिक विस्तृत मानना चाहिए, क्योंकि वे न केवल भावी पीढ़ी के अभिनेता-गायकों तथा संगीत-सम्मेलनों में रंगमंच संगीत के प्रतिनिधियों के, अपितु समाज के विशाल क्षेत्र के भी आदर्श थे।

उदाहरणतया, जब "नट सम्राट" अपने व्यवसाय में चरमोत्कर्ष पर थे तो व्यापारिक संस्थान अपनी वस्तुओं का प्रचार करने के लिए उनकी स्त्री भूमिकाओं के फोटो अपनी विभिन्न वस्तुओं पर छापते थे, जैसे कैलेंडर, डायरी तथा लिखने-पढ़ने की चीजों पर। उनके इस तरह के फोटो विशिष्ट वर्ग के लोगों के घरों की बैठकों में भी अपना गौरवपूर्ण स्थान रखते थे। रंगमंच से बाहर वास्तविक जीवन में नारायण श्रीपद राजहंस के रूप में वे जिस प्रकार के सज्जा उपकरण पहनते थे उनका उन दिनों बहुत रिवाज था। विशिष्ट वर्ग के फैशनेबल व्यक्तियों के लिए ऐसी लोकप्रिय वस्तुएं धारण करना, जैसे "गंधर्व टोपी", "गंधर्व पगड़ी", "गंधर्व कोट और पतलून", "गंधर्व जूते",और भी प्रयोग करने की अन्य वस्तुएं, विशिष्टता का प्रतीक थीं।

"गंधर्व" शब्द में भी चमत्कारपूर्ण समान शक्ति थी क्योंकि वह "नट सम्राट" के साथ

लगा हुआ था। पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध या इससे भी अधिक समय तक, मराठी संगीत रंगमंच के अधिकतर गायकों की पहचान का अपना ही ढंग था। ऐसा करने के लिए उनके प्रिय दर्शकों ने उनके उपाधिपूर्ण उपनाम कुछ इस प्रकार के रख दिये जैसे "सवाई गंधर्व" और "छोटा गंधर्व"। मराठी "नाट्य संगीत" के ये प्रतिनिधि, जिन्होंने कभी रंगमंच पर अभिनय नहीं किया था किंतु फिर भी उपाधि मिल गई थी, अभी भी हमारे बीच काफी संख्या में हैं— जैसे "कुमार गंधर्व" "गुणी गंधर्व" और "आनंद गंधर्व"। क्या ये सब गंधर्व असली "गंधर्व" के समान महानता और श्रेष्टता पा सके यह एक विवाद का विषय है। बस इतना ही कहना काफी है कि हमारे समय के बहुत से अभिनेताओं और गायकों के साथ "गंधर्व" शब्द का लगाना यदि और कुछ नहीं, बाल गंधर्व की लोकप्रियता का प्रमाण है।

बाल गंधर्व के जीवनकाल में और उनके निधन के बाद भी बहुत से अभिनेता-गायक हुए जिन्होंने उनकी बराबरी करने का प्रयास किया। घटती हुई लोकप्रियता के परिणामस्वरूप तथा मराठी संगीत नाटक की लोकप्रिय शैली के पतन के कारण, "नाट्य संगीत" शास्त्रीय संगीत गायन के लिए संगीत-गोष्ठी का एक भाग बन गया जो आज तक निरंतर चला आ रहा है। यद्यपि किसी ने भी "नाट्य संगीत" की स्वतंत्र गोष्ठी नहीं देखी होगी, फिर भी, ऐसी हैं किंतु बहुत कम और विरली।

और रंगमंच से अलग ये नाट्य संगीत के गायन ही हैं जिनसे कोई बाल गंधर्व की अप्रत्यक्ष "शिष्य परंपरा" के महत्व को समझ सकता है। पुरुष तथा महिला गायकों की संख्या बहुत अधिक है और इसी कारण से इस जीवनी की परिधि में उन सब गायकों के अलग-अलग नाम गिनाना संभव नहीं जान पड़ता।

यदि बाल गंधर्व की प्रतिभा सारे महाराष्ट्र को अपने सम्मोहक मायाजाल में बांध सकती है तो मराठी भाषी क्षेत्र से बाहर इनका प्रभाव और भी आश्चर्यजनक है। उन नामों में से एक नाम जो दिमाग में आता है वह नाम है के० रघुरामैया का जो आंध्र के सुप्रसिद्ध अभिनेता-गायक हैं और अभी भी जीवित हैं। उन्होंने "नट सम्राट" की पूजा की थी और उनके संगीत एवं अभिनय कला को वास्तविक रूप में अपने महाकाव्य "एकलव्य" में आत्मसात करने का सफल प्रयास किया था। जब कभी भी उनके अप्रत्यक्ष परामर्शदाता का नाम लिया जाता है तो सप्तति-वर्षीय रघुरामैया कृतज्ञतापूर्वक उसे याद करके रो पड़ते हैं।

ऐसी ही अवस्था यशस्वी नाट्यकलाकार, जयशंकर उर्फ सुंदरी की है, जिसने "नट सम्राट" से प्रेरणा लेकर अपनी कला द्वारा गुजराती रंगमंच प्रेमियों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसी तरह के और भी कई उदाहरण देश के विभिन्न भागों में होंगे जिनमें अभिनेता-गायकों ने बाल गंधर्व की कला से कम या अधिक मात्रा में प्रेरणा प्राप्त की है। इनमें से प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेता, शिवाजी गणेशन, तथा यशस्वी बी० एन० चिन्नप्पा हैं जो दोनों दक्षिण

भारत के हैं।

"नट सम्राट" के अनेक अन्य प्रमुख भक्तों की सूची में कराची के करोड़पति स्वर्गीय लक्ष्मीदास ईश्वरदास का नाम अग्रणी है। इस सिंधी संरक्षक ने उनको संकट से निकालने के प्रयास में अपना सब कुछ दांव पर लगा दिया था ताकि नाट्यकलाकार का भला हो सके। कहते हैं उसकी अंतिम इच्छा थी कि उसका अंतिम श्वास "नट सम्राट" का सजीव-संगीत सुनते हुए निकले। इच्छा पूरी न हो सकी क्योंकि उस समय नाट्यकलाकार स्वयं असहाय अवस्था में पड़े थे।

तब फिर, व्यावसायिक क्षेत्र से बाहर प्रकांड पंडित जैसे सुप्रसिद्ध कन्नड़ साहित्यकार और ज्ञानपीट पदक विजेता के० शिवराम कारंथ तथा बंगाली बहुमुखी प्रतिभासंपन्न हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय के नाम आते हैं जो कि "नट सम्राट" और उनकी कला दोनों में ही श्रद्धा रखने के लिए प्रसिद्ध थे।



17

उपसंहार

इस जीवनी से ज्ञात होता है कि बाल गंधर्व का जीवन तथा जीवन-वृत एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसके जीवन का प्रारंभ निर्धनता से हुआ और धनवान बनता चला गया, फिर अमीरी से गरीबी की ओर वापिस चला गया। और यद्यपि, जैसा कि इस कहानी के बहुत प्रारंभ में बताया जा चुका है यह मराठी संगीत नाटक के उतार-चढ़ाव की भी कहानी है; उनके जीवन में घटनाएं और प्रसंग इतने अधिक हैं कि अपने ही ढंग से एक सशक्त नाटक का विषय प्रदान कर सकते हैं।

वर्ष 1988 "नट सम्राट" की जन्म शताब्दी के स्मरणोत्सव के रूप में न केवल महाराष्ट्र में अपितु पूरे देश भर में मनाया गया। विशेषतया महाराष्ट्र के सांस्कृतिक क्षेत्र में एक अभूतपूर्व लहर सी उमड़ पड़ी जिससे मराठी-भाषी लोगों की संगीतज्ञ के प्रति गहन श्रद्धा परिलक्षित होती थी। चहुं ओर समस्त राज्य में बाल गंधर्व ही था। महानगरों से लेकर छोटे कस्बों तक, "नाट्य संगीत" के समारोह, सेमिनार और विचार-गोष्ठियां शताब्दी समारोह का एक भाग बन गयीं थीं। समाचार पत्रों के अतिरिक्त, राज्य-प्रचार माध्यमों ने भी उनकी देन की विशालता एवं अद्वितीयता को प्रकाश में लाने के लिए पर्याप्त समय प्रदान किया।

उनके रंगमंच प्रदर्शनों और सरकारी माध्यमों द्वारा दिये गये कार्यक्रमों के बारे में बताते हुए दुख होता है क्योंकि, बहुत कम लोगों को छोड़कर, अधिकतर लोग बस आते थे और चले जाते थे। नाट्यकलाकार की याद में जो कुछ भी प्रस्तुत किया गया उसमें अधिकतर अभिनय करने तथा गीत गाने के ढंग की बुद्धिहीन नकल थी।

इससे यही विचार उत्पन्न होता है कि बाल गंधर्व की प्रतिभा का क्षेत्र इतना अधिक फैला हुआ था कि समकालीन अभिनेता और गायक उसे समझ नहीं सके। वस्तुतः उनके ऐसे कितने व्रतधारी अनुयायी हैं— बाल गंधर्व ने अपने पीछे प्रत्यक्ष "शिष्य परंपरा" नहीं बनायी — जिन्होंने उनकी कला की आत्मा को बनाये रखा। यह प्रश्न सदैव अनुत्तरित रहेगा। उनके जैसा व्यक्ति हजारों वर्षों बाद कोई एक पैदा होता है : जो कि सच्चे शब्दों में एक "युग पुरुष" था। हमारे पास तो केवल उनके ग्रामोफोन रिकार्ड और उनकी कैसेट

ही हैं जो कि उनकी महानता के स्मृति-चिन्ह हैं और जिन्हें हमें हृदय में संजोए रखना तथा भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखना है।

परिशिष्ट-I

बाल गंधर्व के जीवन एवं जीवन-वृत के सुस्पष्ट-निर्देश

26 जून 1888	पुणे के एक ब्राह्मण परिवार में जन्म। नाम नारायण, सुपुत्र श्रीपद कृष्णाजी राजहंस ।
1898	लोकमान्य तिलक द्वारा "बाल गंधर्व" को उपाधि प्रदान करना।
1903	घरेलू विपत्तियों का वर्ष: नारायण को कुत्ते द्वारा काटा जाना और उसके पिता का दुर्घटनाग्रस्त होना जिसके परिणामस्वरूप अस्थायी रूप से असमर्थ होना।
1904 से 1905	नारायण का कोल्हापुर जाना जहां पर कोल्हापुर के नरेश साहू महाराज को उसकी योग्यता का पता चलना। महाराज द्वारा नारायण को छोटी सी पड़ोसी रियासत मिराज में भेजना।
25 अक्तूबर 1905	नारायण का किर्लोस्कर नाटक मंडली में शामिल होना। मराठी संगीत रंगमंच पर खेले गये नाटक शाकुंतल में, जो कालिदास के संस्कृत नाटक का अन्नासाहेब किर्लोस्कर द्वारा किया गया मराठी रूपांतर था, शकुंतला की भूमिका करना ।
1906 से 1910	अन्नासाहेब किर्लोस्कर के साझेदार गोविन्द बल्लाल देवल द्वारा नारायण को स्त्री भूमिकाओं के व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के वर्ष, जिनमें शकुन्तला, सुभद्रा, शारदा और वसंतसेना की भूमिकाएं थीं जो कि क्रमशः शाकुंतल,सौभद्रा, शारदा और मृच्छकटिका नाटकों में की गई ।
1910 से 1916	मान-अपमान, विद्याहरण और स्वयंवर नाटकों में क्रमशः भामिनी, देवयानी, और रुक्मिणी की नारी प्रमुख भूमिकाओं के लिए रंगमंच - अभिनय और गायन में के० पी० उर्फ काका साहेब खादिलकर से और आगे प्रशिक्षण प्राप्त करने के वर्ष।

1907 से 1911	गोबिन्दराव तेम्बे द्वारा मार्गदर्शन एवं निर्देशन के वर्ष ।
12 मार्च 1911	मान-अपमान के प्रथम रंगमंच प्रदर्शन में बाल गंधर्व का भामिनी की भूमिका में आना ।
31 मई 1913	विद्याहरण के प्रथम रंगमंच प्रदर्शन में देवयानी की भूमिका में आना।
5 जुलाई 1913	गंधर्व नाटक मंडली की स्थापना ।
19 जुलाई 1930	किर्लोस्कर नाटक मंडली से निकल जाना ।
13 सितम्बर 1913	गंधर्व नाटक मंडली द्वारा मूकनायक का प्रथम रंगमंच प्रदर्शन।
10 दिसम्बर 1916	स्वयंवर के प्रथम रंगमंच प्रदर्शन में रुक्मिणी की भूमिका करना।
20 फरवरी 1919	एकच प्याला का प्रथम प्रदर्शन जिसमें सिंधु की भूमिका निभायी।
1 दिसम्बर 1919	गंधर्व नाटक मंडली का पूर्ण स्वामित्व।
29 मई 1921	ऋणग्रस्तता के कारण गंधर्व मंडली पर कर्जदारों का कब्जा।
8 जुलाई 1921	गंधर्व मंडली और ललित कलादर्श मंडली का मिलकर संयुक्त मान अपमान' का प्रदर्शन करना जिसमें बाल गंधर्व और केशवराव भोंसले द्वारा क्रमशः भामिनी और धैर्यधर का अभिनय करना ।
1 जनवरी 1928	बाल गंधर्व द्वारा पूरा ऋण उतारना तथा मंडली का स्वामित्व पुनः पाना।
21 जून 1929	सर्वसम्मति से मराठी नाट्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुना जाना।
18 मई 1934	बाल गंधर्व और प्रभात फिल्म कंपनी के बीच साझेदारी ।
31 दिसम्बर 1934	गंधर्व नाटक मंडली का बंद होना ।
4 अप्रैल 1935	गंधर्व नाटक मंडली की पुनः स्थापना ।
7 दिसम्बर 1935	बाल गंधर्व तथा प्रभात फिल्म कंपनी द्वारा बनायी गयी धर्मात्मा फिल्म का प्रदर्शन जिसमें बाल गंधर्व द्वारा एकनाथ की पुरुष भूमिका निभाना।
18 अप्रैल 1936	बाल गंधर्व और प्रभात फिल्म कंपनी के बीच साझेदारी समाप्त होना।
जून 1936	गंधर्व मंडली में नारी भूमिकाएं करने के साथ रंगमंचीय जीवन का पुनः आरंभ।
अगस्त 1937	रूईकर चित्रा से साझेदारी तथा साझेदारी के ध्वज तले मीराबाई फिल्म जारी करना और उसमें बाल गंधर्व द्वारा भूमिका निभाना।
जनवरी 1944	स्वेच्छापूर्वक गंधर्व नाटक मंडली छोड़ना।

14 अप्रैल 1944	मराठी नाटक शताब्दी सम्मेलन के स्मरणोत्सव पर बंबई में सर्वसम्मति से मराठी नाट्य शताब्दी सम्मेलन का अध्यक्ष चुना जाना।
2 फरवरी 1952	अधरंग का दौरा।
मार्च 1955	रंगमंच अभिनय के लिए केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार (राष्ट्रपति पदक) प्रदान किया जाना।
22 मई 1955	स्वयंवर में रुक्मिणी की अंतिम बार भूमिका निभाना।
2 फरवरी 1964	बाल गंधर्व के 75 में जन्मदिन के उपलक्ष में जनता द्वारा अभिनंदन।
8 अप्रैल 1964	बंबई मराठी नाट्य परिषद और उसके अनुयायियों द्वारा मिलकर बाल गंधर्व को उनके 75 वर्ष पूरे होने पर बधाई देना। भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्म भूषण की उपाधि से सम्मानित करना।
15 जुलाई 1967	पुणे में लम्बी बीमारी के बाद स्वर्गवास।

परिशिष्ट - II

बाल गंधर्व : उनकी लोकप्रिय भूमिकाएं

बाल गंधर्व ने अपने प्रसिद्ध रंगमंचीय जीवन काल में किर्लोस्कर नाटक मंडली के लिए तथा अपनी निजी गंधर्व नाटक मंडली के लिए विभिन्न नारी भूमिकाएं निभायीं । ऐसा लिखित रूप में उपलब्ध है कि उन्होंने 27 नाटकों में लगभग 36 स्त्री भूमिकाएं कीं और 5000 से अधिक रंगमंच प्रदर्शन किये । जिन संगीत नाटकों का उन्होंने रंगमंच प्रदर्शन किया और उन्हें प्रदर्शित करते हुए जो-जो भूमिकायें निभायीं, उनके तथा नाटककारों के नाम निम्नलिखित हैं :-

क्रम सं०	नाटक	भूमिका	नाटककार
1.	**शाकुंतल**	शकुंतला	अन्नासाहेब किर्लोस्कर
2.	**सौभद्रा**	सुभद्रा	अन्नासाहेब किर्लोस्कर
3.	**राम-राज्य वियोग**	मंथरा	अन्नासाहेब किर्लोस्कर
4.	**मृच्छकटिका**	वसंतसेना	जी० बी० देवल
5.	**शाप-संभ्रम**	महाश्वेता	जी० बी० देवल
6.	**शारदा**	नटी/शारदा/ इंदिराकाकु	जी० बी० देवल
7.	**वीर तनया**	मालिनी	एस० के० कोल्हटकर
8.	**मूकनायक**	सरोजिनी	एस० के० कोल्हटकर
9.	**गुप्ता-मंजूष**	नंदिनी	एस० के० कोल्हटकर
10.	**चन्द्रहास**	विषया	पी० बी० डोंगरे
11.	**सुमति**	चंपा उर्फ गोरा	एस० वी० कुलकर्णी
12.	**मति-विकार**	सरस्वती	एस० के० कोल्हटकर
13.	**प्रेम शोधन**	इंदिरा	एस० के० कोल्हटकर
14.	**मान-अपमान**	भामिनी	के० पी० खादिलकर

क्रम सं०	नाटक	भूमिका	नाटककार
16.	**संशय कल्लोल**	रेवती	जी० बी० देवल
17.	**स्वयंवर**	रुक्मिणी	के० पी० खादिलकर
18.	**सहचारिणी**	वत्सला	एस० के० कोल्हटकर
19.	**एकच प्याला**	सिंधु	आर० जी० गड़करी
20.	**द्रौपदी**	द्रौपदी	के० पी० खादिलकर
21.	**आशा-निराशा**	लकेरी	वाइ० एन० तिपनिस
22.	**नंद कुमार**	राधा	वी० एस० गुर्जर
23.	**मेनका**	मेनका	के० पी० खादिलकर
24.	**विधि लिखित**	वैजयंती	वी० एस० देसाई
25.	**कान्होपात्रा**	कान्होपात्रा	एन० वी० कुलकर्णी
26.	**सावित्री**	सावित्री	के० पी० खादिलकर
27.	**अमृत-सिद्धि**	मीराबाई	वी० एस० देसाई

बाल गंधर्व ने कुछ नाटकों में निम्नलिखित पुरुष भूमिकाएं भी की थीं :-

1.	**सौभद्रा**	अर्जुन	अन्नासाहेब किर्लोस्कर
2.	**मृच्छकटिका**	चारूदत्त	जी० बी० देवल
3.	**शाप-संभ्रम**	पुंडरिका	जी० बी० देवल
4.	**वीर तनया**	शूरसेन	एस० के० कोल्हटकर
5.	**शारदा**	कोडंडा	जी० बी० देवल
6.	**मान-अपमान**	धैर्यधर	के० पी० खादिलकर
7.	**संशय-कल्लोल**	अश्विन-सेट	जी० बी० देवल

परिशिष्ट-III

संदर्भ

1. **मखमलिचा पददा** (मराठी) : वसंत शांताराम देसाई
2. **बाल गंधर्व** : व्यक्ति आनि कला (मराठी) : वसंत शांताराम देसाई
3. **संगीताचे मानकरी** (मराठी): एकलव्य
4. **पद्‌यामागील बाल गंधर्व** (मराठी) : पद्‌मा खेदेकर तथा दुर्गाराम खेदेकर
5. **बाल गंधर्व जन्म-शताब्दी विशेषांक** (मराठी) : महाराष्ट्र टाइम्स, बंबई (1987)
6. **मराठी म्यूजिकल नंबर, विशेषांक** (अंग्रेजी) : लोकराज्य, बंबई (1980)
7. **बाल गंधर्व वर्थ सेंटेनरी विशेषांक** (अंग्रेजी) : लोकराज्य, बंबई (1987)